आदमी और पत्थर

सत्य पाल आनन्द

साहित्य प्रकाशन दिल्ली से संयुक्त
विद्या भवन
लुधियाना

आदमी और पत्थर
—एक कहानी-संग्रह

पहली बार
—मार्च १९६०

लेखक की अन्य पुस्तकें—

पेन्टर बावरी
भूरी
चौक घण्टा घर
सुबह दोपहर शाम (उर्दू)
युग की आवाज़
जीने के लिये (उर्दू)
दो राहें (उर्दू)
आज़ादी की पुकार
बातों का व्यापारी

मूल्य : दो रुपये पचास न.पै.

मुद्रक :—
सीतल प्रेस, चौड़ा बाज़ार,
लुधियाना।

आदमी

और

पत्थर

—सत्यपाल आनन्द

'दीश' को—,
जो इसे देख भी नहीं पाएगी ।

सूची

"यह कहा जा सकता है कि कला चुम्बन-प्रक्रिया की न्याईं है। इसमें दोनों पक्षों का किंचित सहयोग आवश्यक है। जैसा गहन का प्यार का होना, वैसा ही सहयोग का स्वभाव होगा। कहानी-कला में उपन्यास की अपेक्षा पाठक का अधिकतर और गहनतर योग अभीष्ट है। सो कहानी में ग्राह्य पाठक के लिए कम है; और केवल अपने 'स्व' के योग से ही उसे अधिकांश उपलब्धि होगी। आधुनिक-कहानी जीवन का अलंकारिक संकेत है, जो इसके परिवेश से बाहर है। इसके संक्षिप्त प्रारूप में विस्तृत व्याख्या का कतिपय स्थान नहीं। छपे हुए पन्ने से कहीं परे, पाठक को स्वयं कथ्य ढूंढना होगा और अपने लिए स्पष्टिकरण करना होगा, जिसे लेखक अपने शिल्प-संयम के कारण अंशतः व्यक्त कर पाया है।"

—एच. ई. बेट्स

आदमी और पत्थर

सामने दीवार पर लटकते यसूह के सलीबी चित्र की भांति आर्टिस्ट ने अपनी बाहें फैला दीं और जैसे हथेलियां खोल कर उन में कीलों के गड़ने की प्रीक्षा करता रहा।

और फिर जैसे चुप्पी के आभास को और कड़ुवा करने के लिये मेज़ पर रखे टाइम-पीस की टिक टिक अधिक ऊंची हो गई, और अंगीठी में जलती खुश्क लकड़ियां चटख़ने लगीं।—दूर नीचे खड्ड से किसी पक्षी का चीत्कार सुन पड़ा।

उसने आंखें खोल दीं, फिर आराम कुर्सी पर बैठ गया। धीरे से बोला, "एक बार मास्को थियेटर एम्पोरियम में बहुत पीने के बाद हम ओपेरा देखने चले गये। "रोमियो और ज्यूलियट" दिखाया जा रहा था। आपेरा के शीशे उलटी ओर से पकड़ कर मैं उन से झांकने लगा . आप जानते हैं, मुझे क्या नज़र आया ? बस यही हाल दुनिया का है ! हम भावुक लोग इसे ओपेरा के उलटे शीशों में से देखते हैं

और भूल जाते हैं कि दुनिया ग़लत नहीं है, हमारा देखने का ढंग ग़लत है ..... ।''

लम्बा कद, छरेरा बदन, ऊनी कमीज़ और पतलून, बड़ी बड़ी गम्भीर आंखें, चौड़ा माथा और रुखे बाल ।

आर्टिस्ट मुझे बहुत अच्छा लगा । मैंने कहा, ''आप से मिल कर बहुत खुशी हुई । इन पहाड़ों में आप जैसा प्रसिद्ध कलाकार मौजूद है, इसका ज्ञान किसे है ? यहां ऐसा व्यक्ति कहां मिलता है, जिसके साथ बैठ कर दो घड़ी बातें ही कर ली जाए । सभी तो जाहिल और अनपढ़ हैं ।''

उसने फिर कहा, ''और मैं अपना देखने का ढंग दुनिया से अधिक प्रिय रखता हूं । इसलिए दुनिया से भाग आया हूं । दिल्ली, बम्बई, इलाहाबाद और अलीगढ़ के इंटलैक्चुयल सर्कल आज नहीं, तो कल मुझे भुला देंगे...सामान और मकान की बिकरी से जो रुपया मिला वह और दूसरी इकट्ठी की हुई पूंजी ले कर यहां आ गया हूं । यह मकान लकड़ी का है, परन्तु बहुत आराम-देह है । सस्ता मिल गया है । पिछले दो मास से यहां हूं...एक बूढ़ी नौकरानी, एक पालतू तोता, और मेरे रंग का ब्रश, अब तो यही मेरी दुनिया है, मेरा कुल संसार है ।''

उसने आंखें फिर बन्द कर लीं और आराम-कुर्सी पर आधा लेट गया । मैंने एक लम्बा सांस लिया और बाहिर देखा । जिस बरामदे में हमारे कमरे का द्वार खुलता था, उसके दरवाज़ों में पौधों और फूलों से भरे गमले लटक रहे थे । नीचे तीन सीढ़ियों के बाद एक नाहमवार रास्ता था, जो दस पन्द्रह गज़ के बाद उस बड़े रास्ते में जा कर मिल जाता था, जो सांप की भांति बल खाता हुआ, नीचे खड्ड की गहराइयों में ओझल हो जाता था । एक ओर खड्ड की ढलवान के साथ हलके बादल तैर रहे थे । दूसरी ओर इन्द्र-धनुष था, जैसे किसी देवी ने

अपनी सात रंगों वाली चुनरी रस्सी में बट कट फेंक दी हो।

मुझे बहुत सकून महसूस हुआ। आर्टिस्ट का घर वास्तव में स्वर्ग था। आर्ट और सकून का गहरा सम्बन्ध है, मैंने सोचा। खड्ड की ओर से नज़र हटा कर मैं अन्दर कमरे में ले आया। दीवारों पर आर्टिस्ट के बनाए हुए कई चित्र थे। कई कैनवेस तो बहुत बड़े थे। $2\frac{1}{2} \times 3'$ पर पोस्टर-कलर में एक न्यूड-स्टडी थी, जिसमें एक लड़की आगे की ओर को झुकी हुई आग्रह-पूर्वक अस्वीकार का अध्ययन पेश कर रही थी। इसके बिलकुल साथ युद्ध का एक भयानक मनज़र था, जिस में कई मृत शरीरों के बीच एक मां की लाश थी, जिसकी मुर्दा छाती पर उसका भूखा बच्चा झुका हुआ था। कई और चित्र थे। हर एक चित्र स्वयं में सम्पूर्ण और सजीव वास्तविकता लिये था।

उसकी आंखें फिर बन्द हो गईं। होठों में ही जैसे स्वयं से ही उस ने कहा, "कभी कभी मुझे यूं लगता है, जैसे मैंने इसी जीवन में एक नया जन्म लिया है। यहां आने से पहले का जीवन अब मुझे अपना लगता ही नहीं। मैं विश्वास ही नहीं कर सकता, कि पिछले दो मास के अतिरिक्त भी मेरा कोई जीवन है! अपना सब कुछ, अपने ग़म, अपनी खुशियां, अपने पुण्य, अपने पाप–सभी कुछ नीचे मैदानों में छोड़ आया हूं!" चाय आ गई। मैंने देखा, बूढ़ी नौकरानी पहाड़ी होते हुये भी साफ सुथरा लिबास पहने थी। मैंने उसे कहा, "ज़रा, सामने की खिड़की खोल दो!"

वह एक पग उधर बढ़ी, फिर उसनें अपने मालिक की ओर देखा। "रहने दो......" आर्टिस्ट जल्दी से बोला, "बन्द ही रहने दो...... माफ कीजिए!" वह मेरी ओर खोखले स्वर में बोला, "उधर देखने योग्य कुछ नहीं है। पचास फुट तक एक चट्टान बढ़ी हुई है, और उसके बाद वह खड्ड शुरु हो जाती है।"

उसी समय किसी ने अन्दर से तोतली बच्चों की सी आवाज़ में

पुकारा, "मैं तुम से प्रेम नहीं कर सकती..... मैं तुम से प्रेम नहीं कर सकती... "

वह बहुत लापरवाई से बोला, "मेरा तोता है ! बहुत बातें करता है...आप को दिखाऊं ?"

शाम घनी हो गई थी । बादल दौड़े चले आ रहे थे । मैंने कहा, "नहीं मुझे अभी तीन फर्लांग चलकर डाक-बंगले तक पहुंचना है, परन्तु मैं आपके चित्र देखना चाहता हूं । दिल्ली में एक बार आप की वन मैन एक्सीहिबीशन देखी थी । उसके बाद तो आप ने कई चित्र बनाए होंगे ?"

"कुछ बहुत अधिक नहीं, यही तीन चार ही..." उसने चाय का प्याला बनाकर मुझे दिया । हम खामोशी से बैठे चाय पीते रहे । उठने से पहले मैंने एक बार कहा, "तो आप आपनी शेष ज़िन्दगी इसी एकांकी कोने में काटना चाहते हैं ?"

"जी हां, शेष ज़िन्दगी !" उसने शब्द दोहराए । धीरे से हंसा । मुझे उसकी हंसी में कड़वा-पन सा महसूस हुआ । "शेष ज़िन्दगी ।" उसने फिर दोहराया ।

मैं उठ खड़ा हुआ—"फिर आऊंगा , नमस्ते !"

"नमस्ते !"

वह मुझे दरवाज़े तक छोड़ने नहीं आया । मैं दो पग ही चला था कि तोते की तोतली चिरचरी आवाज़ फिर आई, "मैं तुम से प्रेम नहीं कर सकती !"

हिमाचल के इस गैर-आबाद से स्थान पर मैं ब्लाक-डिवैलपमैंट अफ़सर के तौर पर आया था । सामाजिक स्तर पर मिलने जुलने के लिए चन्द लोग ही थे, और ज़मीनदार राम सिंह से आर्टिस्ट मोहन महला के सम्बन्ध में सुनकर मैं तुरन्त ही उससे मिलने चला आया था ।

नित्यप्रति ऐसा होता, कि मैं सुबह सैर के लिए डाकबंगले से

निकल कर नीची पहाड़ी पर हो लेता। टेढ़ी, बल खाती हुई पगडंडी पर पहाड़ी स्त्रियां पीठ पर दूध के मटके लटकाए, उन्हें माथे पर रस्सी से बांधें, कसबे की ओर आती मिलतीं। लाल-श्वेत रंग और बौने से क़द—कई सादे चेहरे भी बहुत भले लगते। आस पास के देहात में सरकारी कार्य के सम्बन्ध में आने जाने से, और नारी निकेतन सेंटरों के खुलने के कारण, बहुत सी अल्पायु स्त्रियां मुझे पहचानने लगी थीं। इसलिए कदम कदम पर उनकी नमस्ते और बन्दगी का उत्तर देना पड़ता। कभी कभी कोई गडरिया बांसुरी बजाता मिल जाता तो मैं तान में खोकर वहीं सुस्ताने लगता। सुर्मयी चट्टानें, गहरा आकाश, हल्के हल्के उड़ते बादल, जो चेहरे से टकराएं तो रेशमी हाथों के स्पर्श का ख्याल आए। लाल लाल छतों वाले बेढंगे मकान, बर्फ़ों से लदी और सब्ज़ों से ढकी चोटियां......मैं पहाड़ों का नया बंदी था और वह मुझे अपनी ओर खेंच रहे थे।

ऐसे ही एक अवसर पर आर्टिस्ट मुझे फिर मिला। उसके हाथ में एक सुन्दर बेग था। वह तंग चूड़ीवाले ऊनी पायजामे और बासकट में था। उसका चेहरा मुर्झाया हुआ था और वह बीमार-सा लग रहा था। उसने बड़े तपाक से हाथ मिलाया

"आज कुछ स्केचिंग का इरादा है ?" मैंने पूछा।

"नहीं........" उसने कहा, "यूं ही जरा हवाखोरी के लिए निकला था !" और जैसे इस ब्यान के प्रमाण के तौर पर ही उसने अपने बैग से ड्राईंग-पेपर और पैंसिल निकाल लिये और फिर सामने चट्टान पर खड़े एक टुंड-मुंड, टेढ़े-मेढ़े वृक्ष का स्केच बनाने लगा। एक पांव पत्थर पर रखे, कागज घुटने पर जमाए, वह बिल्कुल महव हो गया और जैसे मेरे अस्तित्व को ही भूल सा गया। मैं चुपचाप उसे देखता रहा। जी में आया, यदि मैं भी एक आर्टिस्ट होता, तो कलाकार को उसके रचनात्मक क्षण में; उसकी रचना समेत ही, रंगों

में कैद कर लेता—परन्तु मैं एक आर्टिस्ट नहीं थी, और ......

पांच मिनट में ही पैंसिल स्केच बन गया। मैंने कहा, "मैं देखूं"

"शौक से !" उसने कागज बढ़ा दिया।

कितनी सफ़ाई थी उसके हाथ में ! विंची, माइकलएंजलो, और रैफैलाइट का एक भाई मेरे पास खड़ा था। मेरा जी चाहा, चित्र बनाने वाले हाथ को चूम लूं। वृक्ष की एक एक टहनी, एक एक पत्ता सजीव था। खड्ड के ऊपर बढ़ी हुई चट्टान, पीछे नीला आकाश, हल्के हल्के बादल...परन्तु यह दूर बैक ग्राऊंड में उस पहाड़ी के सिरे पर क्या था ? पैंसिल की केवल तीन लकीरें, जिन से एक स्त्री की आकृति की झलक मिलती थी। मैंने स्केच से नजरें हटा कर वास्तविक दृश्य की ओर देखा। दूर वही पहाड़ी थी, जिस पर आर्टिस्ट का घर था और जिसे उसने बैक-ग्राऊंड के तौर पर इस्तेमाल किया था। चित्र में बढ़ी हुई चट्टान के बिल्कुल किनारे पर जो स्त्री की झलक सी थी, वह वास्तविक दृश्य में मौजूद थी। स्त्री, जो आत्महत्या के इरादे से खड्ड पर झुकी हुई थी, परन्तु जिसका चेहरा वापस जीवन की ओर था। मैंने फिर ध्यानपूर्वक दूर पहाड़ी की तरफ देखा। स्त्री की आकृति का हल्का-सा खाका ! शायद कोई सलेट का पत्थर था, जो बर्फ, आंधी और वर्षा से अभी तक बचा हुआ चट्टान के ऐन आखिर में, गहरे भयानक खड्ड के मुंह पर झुका हुआ खड़ा था। जिसे देखकर किसी स्त्री का धोखा होता था। "स्त्री, जो आत्महत्या से पहले ही पत्थर हो गई !" एक सुन्दर वाक्य मेरे मस्तिष्क में उभरा—और फिर मुझे ख्याल आया, कि स्त्री का यह पोज़ मेरा जाना-पहचाना है, मैं इसे कहीं देख चुका हूं। परन्तु कब ? कहां ?

"वह क्या है ?" मैंने अंगुली से संकेत करते हुए पूछा।

एक क्षण के लिए आर्टिस्ट चुपचाप खड़ा रहा। फिर न जाने उसे क्या हुआ, उसके पांव लड़खड़ाए। वह शक्तिहीन-सा, निढाल पत्थर पर

बैठ गया। मैं उसे सहारा देने के लिए आगे बढ़ा, परन्तु उसने मुझे रोक दिया। मैं चकित-सा उसकी ओर देखता रहा। फिर उसने मुझ से पूछा,

"वह पत्थर स्केच में भी है ?"

"हां......" मैंने कागज उसकी ओर बढ़ा दिया। "केवल तीन लकीरों के सहयोग से आपने कमाल का फार-इफैक्ट दिया है। कितना सुन्दर है यह स्केच ! और रचयिता, रचना करते हुए कितना सुन्दर लगता है, इसका अन्दाज भी मुझे आज ही हुआ। जब आप स्केच बना रहे थे, तो आपके मुख पर एक दिव्य आभा थी, नूर था......परन्तु आप यह क्या कर रहे हैं ?"

इस से पहले कि मैं उसका हाथ पकड़ सकता, वह स्केच फाड़ चुका था। मैं चकित रह गया। उसने कागज के कई टुकड़े करने के बाद उन्हें हवा में उड़ा दिया। एक दिल चीरने वाले ठण्डे श्वास के साथ उसने कहा "मेरे भाई, मैं फूल चुनते चुनते घायल हो चुका हूं। इनकी नर्मी ताजगी और सुगन्धि मेरे मन में कई बार कचोके लगा चुकी है!"

वह सुबकने लगा।

कुछ मिनट बीत गये। वह चुप हुआ तो मैंने फिर खेद प्रकट किया, "कितना सुन्दर और प्यारा स्केच था ! आप मुझे ही दे देते !"

वह उठ खड़ा हुआ। "चलिये ! घर तक चलते हैं ! नाश्ता करेंगे! आज रविवार है, आप फारिग़ ही होंगे !"

मैं उसके साथ चलने लगा, रास्ता खामोशी में कट गया। बरांडे से गुजर कर हम उसी कमरे में आ गये। एकाएक मुझे ख्याल आया कि सामने वाली खिड़की खुली है। शायद नौकरानी ने उसकी अनुपस्थिति में धूप आने के लिये खोल दी थी। उसकी पीठ खिड़की की ओर थी। मैंने देखा, बाहर दूर तक एक बड़ी चट्टान थी और पीछे नीला आकाश, जहां से खड्ड शुरू होता था। परन्तु वह सलेट

का पत्थर ! मैं चौंक गया । चट्टान के एक कोने में जैसे धरती से उगा हुआ, वह सलेट का पत्थर, वास्तव में एक स्त्री की आकृति की भांति दिखाई दे रहा था । स्त्री जो खड्ड में गिरने से पहले ही पत्थर हो गई ! यूं लगता था, जैसे उसका मुख वापस चट्टान की ओर हो, और उसका शरीर नीचे खड्ड में फिसलने ही वाला हो—मुझे फिर वही ख्याल आया, कि यह पोज़ मेरा जाना पहचाना है । कहां देखा है इसे ?

अन्दर से तोते की चिरचरी तोतली आवाज़ आई, "मैं तुम से प्रेम नहीं कर सकती...मैं तुम से......"

और इसके साथ ही मुझे आग्रह-पूर्वक अस्वीकार वाला चित्र याद हो आया । मैंने सिर घुमा कर दाहनी ओर दीवार पर देखा । हूबहू वही ! बिल्कुल वही ! चित्र में पोस्टर कलर एक दूसरे में सन्निविष्ट होते दीख पड़ते थे । यह कला का कमाल था, परन्तु स्टडी वही थी—एक ऐसी न्यूड-स्टडी, जिसके लिये मोहन महता जैसा बड़ा आर्टिस्ट भी कुदरत की कला-प्रवीणता का ऋणी था । यह चित्र अवश्य पिछले दो महीनों में इस सलेट के पत्थर से प्रभावित हो कर बनाया गया था ।

नाश्ता के लिये पहाड़ी सेब, टोस्ट, अंडे और चाय; उसने बहुत बेदिली से खाया । वह बहुत उदास था । मेरा अभाग्य था कि मैं इसकी उदासी का कारण नहीं जानता था, परन्तु जानना चाहता था ।

सेब काटने के लिये उसने मेज़ पर से छुरी उठाई ही थी कि उसकी दृष्टि खुली खिड़की पर पड़ी । छुरी उसके हाथों से गिर गई । जैसे किसी जादू के प्रभाव से खिचा हुआ वह खिड़की के निकट चला गया । पूरा एक मिनट वह वहां खड़ा बाहर घूरता रहा । फिर एकाएक उसने दरवाज़ा ज़ोर से बन्द कर दिया और वापस आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गया ।

उसका मुखाकृति पर रक्त का निशान नहीं था और माथे पर

स्वेत-बिन्दु चमक रहे थे।

मैंने बात पलटने के लिए एक बहस छेड़ दी। आर्ट और जीवन—और जब हमारी बातें बढ़ते बढ़ते सिम्बलिज्म, इम्प्रेशनिज़म, और सुर्रीयलिज्म तक आ पहुंचीं, और मैं डीगा, लुत्री और वानगाफ़ से चलता हुआ पिकासो की चर्चा करने लगा, तो उसने कहा, "मुझे पिकासो से अधिक गेज़ाने और ब्राक का क्यूबिज्म पसन्द है। यह आवश्यक नहीं कि क्यूबिज्म की पहली शर्त ही सबजेक्ट को सीकेंडरी और फार्म को प्राइमरी हैसियत देना हो। फार्म से मडियम का सम्बन्ध भी विचित्र–सा है। कपड़े, और तार के टुकड़े, लकड़ी के चौखटे..."

अन्दर तोता ज़ोर ज़ोर से चीखने लगा। मुझे उसकी बात समझ में न आई। उसने अपना वाक्य पूर्ण किये बिना कुर्सी को पीछे खींचा और उठ खड़ा हुआ। अन्दर जाते हुए उसने बड़े रूखे स्वर में मुझे कहा, 'अब आप जाइये, मेरी तबीयत ठीक नहीं है!"

दिल में एक विचित्र-सी कसक, प्यास और आर्टिस्ट के प्रति सहानुभूति लिये मैं लौट आया।

और फिर मैं अपने कार्य में इतना मग्न हुआ कि पूरे दो सप्ताह तक सैर के लिए बाहर न जा सका। इस बीच में मौसम बदल गया और सर्दी बढ़ गई। रात को, और सुबह के समय दूर दूर तक गाढ़ी धुन्ध छाई रहती। मैं कुछ दिन के बाद अपनी प्राथमिक सर्वे की रीपोंट का खाका तैयार करता रहता। और काम खत्म होने के बाद काफी का प्याला लिये, अंगीठी के पास बैठा रहता। आर्टिस्ट से मिलने की चाह होते हुए भी उधर न जा सका।

इस बीच में चपड़ासी से एक सूचना सुनी, "जनाब, वह चित्र बनाने वाले साहब मकान बेच रहे हैं। और सम्भव है, ज़मीदार साहब खरीद कर हमारे महकमे का ही किराए पर दे देंगे।"

उसी दिन आर्टिस्ट का एक पुर्ज़ा मिला, जो एक मैला, कुचेला

पहाड़ी लड़का लाया था ।

"आज शाम आइयेगा । मेरा नया चित्र तैयार है ।"

मेरे अन्दर सोया हुआ कला का पुजारी मनुष्य जाग उठा । 'मैं उसकी सब तस्वीरें देखूंगा ।' मैंने स्वयं से कहा, 'और सम्भव हुआ तो उससे उसके पिछले कटु जीवन के बारे में भी पूछूंगा ।'

मैं पूरे चार बजे वहां पहुंच गया । जा कर घण्टी बजाई । नौकरानी ने दरवाज़ा खोला । मैं बरसाती और छतरी बरांडे में रखता हुआ कमरे में जा पहुंचा ।

वह चारपाई पर लेटा हुआ था । फोलडिंग-स्टूल के सहारे फर्श पर उसका नया चित्र रखा था । $२ \times २\frac{1}{2}'$ का कैनवस था, जिस पर पर्दा पड़ा हुआ था । साथ ही कई रंग और ब्रश पड़े हुए थे ।

"अरे आप......आपतो......" मैं उसे पहचान ही न पाया । वह इतना कमज़ोर और बीमार दिखाई दे रहा था कि मुझे अपनी आंखों पर यकीन न आया । उसका मुख पीला पड़ गया था । गाल पिचक गये थे, आंखें अन्दर को धन्स गई थीं । वह पन्द्रह दिनों में ही पन्द्रह वर्ष बूढ़ा हो गया था ।

"आपको हुआ क्या है ?" मैंने पूछा ।

"बैठिये !" उसने एक घायल मुस्कान के साथ कहा ।

मैं कुर्सी पर बैठ गया । सब से पहले मेरी नज़र खिड़की की ओर गई । दरवाज़ा केवल बन्द ही नहीं था, बल्कि कीलें गाड़ कर सदा के लिये जोड़ दिया गया था । मैंने दाहनी दीवार पर देखा । मेरा धुंधला सा शक विश्वास में परिणत हो गया । आग्रह-पूर्वक अस्वीकार की सुन्दर स्टडी, वह तस्वीर वहां नहीं थी । उसके स्थान पर एक पुराना लैंड-स्केप लटका हुआ था ।

"मुझे नमूनियां हुआ था, अब ठीक हूं ।" वह बोला, "बीमारी के दिनों में भी काम करता रहा हूं ।"

"आपको अपनी सेहत का ख्याल रखना चाहिये !" मैंने कहा, कला के संसार को अभी आपकी बहुत आवश्यकता है !"

वह फिर मुस्कराया, "कौन जाने मेरा नया चित्र देखेंगे आप ?" कूहनी के बल उठ कर और चारपाई से झुक कर उसने तस्वीर से पर्दा हटा दिया। मैं ध्यान-पूर्वक देखने के लिये, उठ कर दो पग दूर हो गया।

पहले मेरी समझ में कुछ न आया, और फिर एक क्षण में ही सब वातविकता खुल गई——चित्र आइल-पेंट था। कई दराज़ों वाले मेज़ का एक दराज़ खुला था, और इस दराज़ में एक विचित्र-सी दुनियां अबाद थी। गोरीला, इतिहास से पूर्व समय के जानवर, हवाई जहाज़, राकेट, नक्षत्र, चांद और धरती, इन्सान ओर पशु, घरेलू सामान, नदियां और पहाड़, भयानक शक्लों वाले मुंह, बिना शरीरों के मुंह .....परन्तु एक चीज़ और थी। मैंने मस्तिष्क पर ज़ोर डाला। यदि इस सब डीटेल को अलग अलग न देखा जाए, तो सामूहिक रूप में वह चीज़ सारे दृश्य पर छाई हुई थी।

"यह मानव का अचेत-मन है...... "मैंने कहा," इतनी-सी बात तो साफ़ ज़ाहिर है। परन्तु इस सारी डीटेल की अलग अलग शक्लें यदि एक क्षण के लिये भुला दी जाएं, तो ..... "मैंने खिड़की की ओर संकेत किया, "तो एक सामूहिक मनज़र जिखाई देता है। वही स्लेट वाला पत्थर ! एक मिनट देखने के बाद आभास होता है, कि वास्तविक चित्र तो केवल इतना है कि मेज़ का दराज़ एक चट्टान का अन्तिम किनारा है, और यह सब वस्तुएं मिल कर केवल एक आकृति बनाती हैं, बाहें फैलाए, सिर मोड़े हुए, ऊंचाई से गिरती एक स्त्री !"

मेरी नज़र अब भी उसके चित्र की ओर थी। दो मिनट बीत गए। मैंने उसकी ओर देखा। वह चुप-चाप बिस्तर पर पड़ा था। एकाएक उसने कहा, "मुझे पहले ही शक था ! मेरे हर चित्र में

किसी-न-किसी रूप से यह दृश्य अवश्य आएगा......" वह सुबकने लगा, "मैंने उस रात चुपके से जाकर वह चट्टान वाला स्लेट का पत्थर तोड़ डाला। सख्त ठण्ड में हथोड़े से दो घण्टों की लगातार मेहनत से मैं बीमार पड़ गया......ओ मेरे ईश्वर !" वह तकिए पर सिर पटक कर चीखने लगा, "ले जाइये इस चित्र को ! ले जाइये !! मैं इसे मिटा दूंगा !"

वह पागलों की भांति उठ खड़ा हुआ। मैंने चित्र उठा कर हाथों में ले लिया——'यदि मुझे इस से लड़ना भी पड़े, तो भी मैं इस महान कला-कृति को बचाऊंगा—' मैंने स्वयं से कहा।

उसी समय अन्दर से तोते की आवाज़ आई।

वह ज़ोर से दहाड़ा। न जाने उस में इतनी शक्ति कहां से आ गई। दो कदमों में ही वह साथ वाले कमरे में था। पिंजरा उठा कर उसने फ़र्श पर पटक दिया। फिर तोते को पांव से कुचल डाला। "मैं अपने पुराने चिन्ह सब मिटा डालूंगा !" वह पागलों की भांति चीखा। "कमला ! तू मेरा जीवन बर्बाद नहीं कर सकती !"

डाक्टर के आने तक, मैं और पहाड़ी नौकरानी उसे उठा कर बिस्तर तक ला चुके थे। वह चित्र बग़ल में दबाए जब मैं वहां से लौटा तो डाक्टर से वायदा ले चुका था कि वह सारी रात पलकें झपके बिना उसके पास बैठेगा।

सुबह चार बजे मुझे पैग़ाम मिला कि आर्टिस्ट की मृत्यु हो गई है। मैं तुरन्त वहां गया। उस समय तक आस-पास की कोठियों में रहने वाले कई और लोग भी आ चुके थे।

डाक्टर ने केवल मुझ से इतना कहा, "हज़ियान से ऐसा मालूम होता था जैसे इनकी पत्नी कमला ने किसी ऊंची जगह से कूद कर आत्म-हत्या की थी। कमला को मरने वाले से प्यार भी नहीं था। वह शायद किसी और को चाहती थी, और......शायद इन दोनों का

झगड़ा ही उसकी आत्महत्या का कारण बना......" वह बड़े भेद-पूर्वक ढंग से मेरी ओर देख कर बोला, "या शायद आर्टिस्ट ने ही उसे धक्का दे कर गिराया हो...!"

"यह आप कैसे कह सकते हैं ?" मैंने पूछा।

उसका लहजा एकाएक कारोबारी हो गया, "कुछ नहीं......आप इनके सम्बन्धियों को जानते हैं ? उन्हें सूचना देनी पड़ेगी !"

*   *   *   *   *

तेरा घर सो मेरा घर

सेठी चारपाई पर औंधे-मुंह, तकिए पर ठोड़ी टिकाए फर्श पर रखी पुस्तक पढ़ रहा था। राना गुसलखाने में नहाते हुए गुनगना रहा था और कौशल फर्श पर बैठकर टूटा हुआ शीशा सामने रखे हुए पुराने ब्लेड से शेव बनाने की कोशिश कर रहा था।

कमरे में दो कुर्सियां थीं। गि़लाफ़ों और गद्दियों से कोरी, धूल से अटी, केले के छिलकों से लेकर गर्म पतलूनों तक सब वस्तुओं से भरी दोनों कुर्सियां सेठी की जायदाद थीं। वह उन्हें 'संडे नीलाम घर' से छः छः रुपये में खरीद कर लाया था, और उनके आतें ही कमरे का नंगा-पन जैसे ढक सा गया था—कोने में रखा हुआ स्टूल भी सेठी का था, परन्तु स्टूल का इतिहास समय की भूल-भुल्लैयों में यूं खो गया था कि उसके जन्म से लेकर सेठी के पास आने तक के सम्बन्ध में विश्वासपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता था। इस फर्नीचर को छोड़ कर सेठी के अपने शरीर के अतिरिक्त कमरे की कोई चीज़ उसकी अपनी

नहीं थी। कपड़े वह कौशल के पहने था। बूट वह कल ही अपने बहनोई से मांग कर लाया था। पुस्तक लाइब्रेरी की थी और चारपाई, बिस्तर, तकिया आदि राना की जायदाद थे।

दीवारों पर केवल तीन कलेंडर थे। कारनस पर कौशल की स्वर्गवासी मां की फ्रेम जड़ी तस्वीर थी, जिस पर लटका फूलों का हार बिल्कुल ताज़ा था। वास्तव में सुबह होते ही गोपाल सामने बंगले के माली से हार बनवा लाता और फिर कौशल के जागने से पहले ही तस्वीर पर लटका देता। जागकर कौशल आंखें मून्दे कारनस के सामने जाकर खड़ा हो जाता। आंखें खोलकर सबसे पहले मां के दर्शन करता, प्रणाम करता और फिर एक मिनट चुप रह कर शेव बनाने लगता।

राना मुंह अन्धेरे उठता। निकर बनियान पहनकर बाहर दौड़ लगाने जाता। आते हुए किसी ठेले वाले से सस्ते-भाव अथवा किसी कोठी के माली से मुफ्त सब्ज़ी ले आता। लौटकर मालिश करता और फिर कौशल और सेठी के जागने से पहले ही नहाने लगता। नौ बजे के लगभग तय्यार हो ट्यूशन पर चला जाता। बारह बजे तक क्लास पढ़ाकर लौटता तो इन दोनों को बेकार बातों में लगा पाता। फिर दिन का प्रोग्राम बनता। खाने के सम्बन्ध में योजना बनती। पत्रों के मैट्रीमोनियल इश्तिहारों के जवाब दिये जाते और गोपाल से मुकर्जी फैमिली के बारे में बातें होतीं।

गोपाल केवल पन्द्रह बर्षों का था, परन्तु उसने इन पन्द्रह वर्षों में कम-से-कम चालीस घरों में नौकरी की थी। इन तीनों के पास आते ही वह इनके रंग में रंग गया था। नक़द वेतन की उसे जरूरत न थी। खाना मिल जाता। पुरानी पतलून और कमीज़ें पहनने को मिल जातीं। कभी कभी सिनेमा आदि के लिए रुपया दो रुपया राना स्वयं ही दे देता। और जब यारों के पास पैसे होते और पीने का प्रोग्राम

बनता तो गोपाल भी शामिल हो जाता। वह स्वयं को मालिक न समझते। और यही कारण था कि गोपाल उनकी प्रशंसा लरते हुए मुकर्जी की पंजाबी पत्नी से कहता।

"बीबी जी, क्या कहूं, कैसे लोग हैं! एक जगह इकट्ठे पैसे रख देतें हैं और जब जिसका जी चाहे खर्च कर लेता है। पांच सब्जियां और दो तरकारियां प्रति दिन बनती हैं। चावल, सलाद, दूध-दही हर जीज़ बनती है.... शहनशाह हैं तीनों!"

मुकर्जी की पत्नी कहती, "भला बादशाहो! अमीर घरों के लड़के हैं। उन्हें किस बात की परवाह? सैंकड़ों रुपये महीना आते होंगे घर से!"

और गोपाल उस पन्द्रह रुपये के मनी-आर्डर का ख्याल करता जो कभी कभी सेठी का बड़ा भाई भेजा करता था और जिस की चिट पर सदैव मेहनत से जुटकर नौकरी तलाश करने की बात लिखी होती थी। वह कहता, "हां, बीबी जी! हमारे सेठी बाबू को तो एक बार दन्द्रह-सौ रुपये का ड्राफ्ट भी आया था...."

"पन्द्रह-सौ रुपये की?" और मुकर्जी की की पत्नी अपनी तीन युवा लड़कियों के सम्बन्ध में सोचती, जिनके दहेज़ के लिये वह चार साड़ियां से अधिक न बना सकी थी।

"गोपाल, ओ गोपाल!" राना ने गुनगनाना बन्द कर के अन्दर से आवाज़ दी।

"मर गया होगा, मुकर्जी के घर में!" कौशल ने ठोडी का कट सहलाते हुए धीरे से उत्तर दिया।

"अरे गधे, सब्ज़ी कौनसी बनाएगा?" राना इसे गोपाल की आवाज समझ कर बोला।

और चारपाई पर उछलकर खड़े होते हुए सेठी ने ऊंची आवाज से कहा, "सब्ज़ी, आलू-मटर, कद्दू के कोफ्ते, रायता, अण्डों की करी

और रौग़न-जोश......"

"आवाज पहुंच गई होगी !" कौशल ने फिर, धीरे से कहा ।

राना नहा कर अन्दर पहुंचा । उसने फर्श से टूटा हुआ आईना उठा लिया । जेब से नई कंघी निकालकर बाल संवारे । कोट पहना । कालर ठीक किए । और फिर एक कुर्सी का सारा कबाड़ उठाकर चारपाई पर फेंकते हुए उस पर बैठ गया । बूट सामने नहीं थे ।

"ओ हो !" उसने कहा, "बूट तो कल शाम को नुक्कड़वाले मोची को दे आया था...गोपाल, ओ गोपाल !"

गोपाल धड़-धड़ सीढ़ियां उतर रहा था, "बूट ले आया था जी..." उसका मनशा भांप कर बोला, "जरा पहनकर ऊपर छत पर गया था, रामदास के कमरे में..." और उसने दूसरी कुर्सी का कबाड़ उठाकर चारपाई पर रख दिया और उसपर पांव रखकर फीते खोलने लगा ।

"गधा स्वयं को क्लार्क गेबल से कम नहीं समझता । रामदास की नई पत्नी के चक्कर में पड़ा है !"

तभी पांव की चाप सुन पड़ी । चप्पल पहने, धीरे कदमों से चलता हुआ कोई आ रहा था । "मिस मुकर्जी नम्बर तीन !" राना ने कहा और शीघ्रता से बूट पहन लिये । गोपाल ने कुर्सियों से फेंके हुए कबाड़ पर दरी बिछा दी । टूटा हुआ शीशा कारनस पर तस्वीर के पीछे रख दिया, यह जानते हुए भी कि छोकरी कमरे में प्रवेश नहीं करेगी ।

राना दरवज़े तक गया । एक बारीक कच्ची आवज़ सुनाई दी, "मिस्टर राना, मम्मी ने कहा है, यदि हो तो मटन की प्लेट नीचे भेज दें... और यह भुने हुए पापड़ ले लें......"

"अरी छोटी ! मटन क्या, रायता और अंडों की करी भी भेज दूं ? अरे गोपाल देख ! तयार होते ही नीचे दे आना !"

"बहुत अच्छा साब ! और आज तो मटर का हलवा भी बना रहा हूं।"

राना ने होठों में ही उसे एक गाली दी, परन्तु ऊंचे स्वर में कहा, "और हां, वह भी ! पहुंच जाएंगी सब, छोटी !"

छोटी ने, जो शायद इतनी छोटी न थी, पीछे फर्श पर बैठे कौशल की ओर देखा, जो शेव कर चुका था । उसके मुख पर लाली दौड़ गई । घबराकर वह तेज़ी से मुड़ गई ।

पांव की चाप दूर होते ही सेठी, राना और गोपाल पर बरस पड़ा, "लाट साहब के बच्चे ! अब मंगवाओ बाज़ार से रोगन-जोश, रायता, अंडों की करी......और इस लाट साहब गोपाल को देखो .... आज तो मटर का हलवा भी बना रहा हूं......" उसने नकल की ।

गोपाल झांपड़ से बचने के लिये राना के पीछे हो गया । कौशल बोला, "सेठी, तुम ने स्वयं ही तो ऊंची आवाज़ से सब चीज़ें गिनवाई थीं......"

"और वह कंगाल की औलाद देखो!" सेठी का गुस्सा अब मुकर्जी की ओर मुड़ा, "जैसे हम तीनों ही तो उसकी लड़कियां ब्याहने चले हैं......काला कलूटी, न शकल, न सूरत !"

"मंझली इतनी काली नहीं, सेठी !" कौशल ने उसे उसकी पसन्द याद दिलवाई ।

"अरे वह तो ठीक है भाई...परन्तु अब कहां से मंगवाओगे ?"

राना ने पांच का नोट निकाला और गोपाल से कहा, "भाग बन्दर के बच्चे ! बाकी सब चीज़ें ले आ और कह देना कि मटर का हलवा जल गया था......समझे ?"

"समझ गया !" गोपाल बोला, "साब के लिए मक्खन और कटी हुई ब्रेड भी ले आऊं ? आज चाय के साथ कुछ नहीं है !"

"चलेगा !" राना ने कहा ।

"नालायक !" सेठी ने राय दी ।

"हां नालायक !" कौशल ने ताईद की।

फिर कुछ यूं हुआ कि गोपाल ने अपना प्रोपेगंडा तेज़ कर दिया और मिसिज मुकर्जी की मांगें बढ़ती गईं। सुबह, दोपहर, शाम, बल्कि रात के दस बजे तक छोटी अर्थात मिस मुकर्जी नम्बर तीन कुछ न कुछ मांगने के लिए कमरे की दहलीज़ पर मौजूद होती। अन्दर आने से झिझकती और यूं भी राना दरवाज़े के बीचों बीच खड़े होकर उससे बात करता। राना को एक क्लास और मिल गई थी और उसका आय एक सौ पचास तक पहुंच गई थी। कौशल ने भी नुमाइश के दिनों एक स्टाल पर काम करके पचास रुपये कमाए थे और घर के सामान में एक टाइमपीस और एक टेबुल लेम्प की बढ़ती हो गई थी। सेठी उसी प्रकार बेकार था और प्रतिदिन मिस मुकर्जी नम्बर दो अर्थात मंझली से मुलाकात की योजनायें बनाया करता था। गोपाल मुकर्जी के घराने में यूं घुल मिल गया था कि अब वह स्वयं ही उनकी मांगें राना तक पहुंचा देता।

"साब, तोषी ने कहा है, कि आते हुए आप वह ऊन अवश्य ले आयें !"

"साब, तोषी नावल पढ़ने को मांग रही है।"

"साब, मैं टेबल लेम्प उठा कर दे आया हूं। कहती हैं, परसों वापस मिलेगा।"

और एक दिन शक की नज़रों से राना की ओर देखते हुए सेठी ने पूछ ही लिया, "यह तोषी पर बड़ी कृपा हो रही है, राना ! तुम इस बड़ी छोकरी से मिले भी हो ?"

"नहीं, सेठी ! तुम तो ख़ाह-म-ख़ाह शक करते हो। वह तो घर से बाहर निकलती ही नहीं। सारा दिन सितार ही बजाती रहती है। म्यूज़िक की टीचर लगने वाली है !"

"देख बेटे, गर्दन मरोड़ दूंगा, यदि ऐसी-वैसी बात हुई तो..."

आमदनी बढ़ने का आवश्यक परिणाम खर्च था, परन्तु एक दिन राना ने पीने-पिलाने से भी न कर दी। साफ कह दिया, "मेरे पास केवल पन्द्रह रुपये हैं, और मुझे एक सूती पतलून बनवानी है।"

कौशल चुपचाप रहनेवाला मनुष्य था, परन्तु बात बड़े पते की किया करता था। बोला, "पतलून किस नाप की बनाओगे ?"

"अपने आप की !" राना ने कुछ झिझककर कहा।

"रेडी-मेड नहीं लाओगे ?" सेठी ने कुछ गुस्से से पूछा।

राना चिढ़ गया, "नहीं !"

"ताकि हम पहन न सकें। यही न ?"

एक गम्भीर चुप्पी छा गई, जिसे तोड़ने की कोशिश किसी ने भी न की। राना बिना चाय पिये ट्यूशन पर चला गया। कौशल और सेठी दोनों ने महसूस किया कि उन्होंने ज्यादती की है। आखिर अपनी कमाई पर कुछ तो हक होना चाहिए उसका।

उसी क्षण दरवाज़े पर चप्पलों की चाप सुन पड़ी। कौशल उठकर गया। मिस मुकर्जी नम्बर तीन थी। कौशल को देखकर झिझक गई।

"वह...वह...आपके यहां रेडियोग्राम नया आया है ?"

"नहीं तो..." कौशल हैरान रह गया।

"वह गोपाल कह रहा था कि राना बाबू लाए हैं। तोषी सिस्टर की कुछ फ्रेंड्ज़ आई हुई हैं, कहने लगीं, मांग लाओ..." वह शरमा गई। एक क्षण ठहरकर उसने पूछा, "आप भी प्रोफैसर हैं ?"

"हां !" कौशल ने झूठ बोला, "क्यों ?"

"कुछ नहीं..." वह और शरमाई, "मुझे इंटरमीजियट की परीक्षा देनी है...कौन सी गाईड लूं ?"

उसी समय गोपाल आ गया। उसके हाथों में सेठी के मांगे हुए बूट थे, जो वह पालिश करवा कर लाया था। छोटी को देख कर वह घबरा गया, बोला, "बीबीजी, आपकी चीज तो राना बाबू अभी

लाए नहीं !" वह चली गई ।

बात की तसदीक हो गई । राना मिस मुकर्जी नम्बर एक गम्भीरता की सीमा तक ही प्रेम करता है, यह बात दोनों ने अनुभव की । वह उन्हें बताए बिना उनके घर भी आता जाता है । कई बार फल भी दे आया है । तोषी के लिए दो नई साड़ियां भी उनके घर पहुंच चुकी हैं । जब वहां जाता है, नया सूट पहनकर जाता है । थर्ड-क्लास एम. ए. डिगरी को फर्स्ट-क्लास बताता है । और शायद...शायद ...मिसिज़ मुकर्जी का दामाद बनने का वायदा भी दे चुका है ।

गोपाल को एक दिन धमकाने से बात का पता चल गया । उसने सब कुछ उगल दिया । राना ने उसे चुप करने के लिए दस रुपये की घूंस दी थी और रामदास की नई पत्नी धनिया को उपहार देने के लिए एक सस्ती-सी साढ़ी भी ला दी थी ।

बात बुरी थी । तीन पुराने मित्रों में तनाव सा पैदा हो गया । सेठी मुंह-फट था । वह झगड़ा करना चाहता था । "एक 'क्रानिक बैचलर' के लिए शादी जहर है...और फिर हम दोनों का क्या होगा ? क्या हम विवाहित राना से वैसा ही सम्बन्ध रख सकेंगे ?"

कौशल ने एक क्षण सोचा, "बुरी बात नहीं है..." उसने कहा, "हर व्यक्ति घर बसाना चाहता है । और फिर डेढ़-दो सौ प्रति मास आय हो, तो वासना भी सताने लगती है । राना ठीक कहता है । मैं तो कहता हूं, हमें राना को कोसने के स्थान पर उसकी सहायता करनी चाहिए ।"

बात माकूल थी, सेठी की समझ में आ गई । उसने कहा, "और फिर लड़की ग्रैज्यूएट है, म्यूज़िक में माहिर है । नौकरी करे तो सौ-डेढ़-सौ कमा भी सकती है । राना का कौन है ? यदि तुम कहो तो शादी एक सप्ताह में ही करवा दूं और फिर सिविल-लाइन्ज़ में बड़ा मकान लेकर रहेंगे । दो कमरों का सैट विवाहित राना के लिए और

एक कमरे का सैट कुंवारे सेठी और कौशल के लिए ”

उन्होंने हाथ मिलाया। “बात पक्की ! लेकिन राना एक ही काईयां निकला। हमें पहले खबर ही नहीं होने दी !”

“साला है।” सेठी ने कहा।

“हां, साला है !” कौशल ने ताईद की।

राना लौटा तो उसने वातावरण बदला हुआ देखा। पहले उसे बात सन्दिग्ध सी मालूम हुई, परन्तु जब उसने घर सजता देखा, कौशल को कमरा और साज सामान झाड़ते फूंकते हुए और सेठी को रसोई घर की सफेदी करते हुए पाया, तो उसका मूड बदल गया। वह स्वयं भी कपड़े उतारकर शामिल हो गया।

कुर्सी की ढीली कील को ईंट से ठोंकते हुए राना ने कहा, “सेठी! हम तीनों यहां इकट्ठे रहेंगे। तुम्हारी भाभी सब का खाना पकाएगी, सब के कपड़े लोहा करेगी और सब की जुराबें मरम्मत करेगी।”

“नहीं, हम तो उसे नौकरी करने को कहेंगे। मर्दों से जल्दी स्त्रियों को नौकरी मिल जाती है। और फिर हम उसे खाना पकाकर देंगे। उसके कपड़े प्रेस करेंगे और उसे बाज़ार से चीज़ें लाकर देंगे। ...जब तक हम दोनों को नौकरी नहीं मिल जाती...” उसने कुछ सोचकर यह वाक्य बढ़ाया।

“हूं...” कौशल ने कहा, “हूं !”

शादी धूमधाम से न हो सकी। यारों ने मिलकर केवल छः सौ रुपया इकट्ठा किया। राना और उसकी होनेवाली दुल्हन ने मिलकर चार-सौ के कपड़े और दूसरा सामान खरीद लाए। मिस्टर मुकर्जी ऐन मौके पर बीमार हो गए और उनके साथ रजिस्ट्रार की अदालत तक भी न जा सके। बहरहाल नया पलंग और बिस्तर खरीदे गए और जब फूलों से सजी दुल्हन उसी बिल्डिंग के निचले भाग से उनके कमरे तक पहुंच गई, तो कौशल ने सेठी की ओर देखा।

"हम आज की रात स्टेशन के वेटिंग रूम में काटेंगे।" सेठी ने कहा।

"क्यों न तीन चार दिनों के लिए बाहर चला जाए ?"

"नहीं हम तीन चार रातें स्टेशन पर ही सोएंगे...इस बीच में नया बड़ा मकान तलाश करेंगे।"

घर का नक्शा बदलना शुरु हुआ। पहले पुराने मोज़े, अखबारें, रद्दी पत्रिकाएं और दूसरा अनावश्यक कूड़ा बाहर फेंके गए। फिर कुर्सियों पर नई गद्दियां बिछाई गई। खिड़कियों पर पर्दे लटकाए गए। जूतों के लिए अलग रेक खरीदा गया। घर में सेठी और कौशल को अपनी दिलचस्पी की कोई बात न मिलती। वह स्टेशन से सुबह आठ बजे बजे नहा धोकर दस बजे तक कमरे तक पहुंचते तो उन्हें राना सोया हुआ मिलता। वह राना, जो कभी सुबह छः बजे उठकर दौड़ लगाया करता था, अब आराम-तलब हो गया था। भाभी से तो केवल एकाध बात होती और वह भी मुश्किल से। खाना अच्छा मिलता, परन्तु वह राना के साथ बैठकर न खा सकते।

एक सप्ताह यूं ही गुजरा।

उस दिन वह दस बजे की बजाए दो बजे आए। राना पत्नी के साथ बैठा खाना खा रहा था। वह लोग आज़ादी से ऊंचे ऊंचें हंस रहे थे और एक दूसरे के मुंह में ग्रास दे रहे थे। शायद ऊनकी गैर हाजरी में पहली बार खुलकर बैठ सके थे।

कौशल खांसा। मिसिज़ राना ने सिर पर कपड़ा ले लिया। वह अन्दर आए और चारपाई पर बैठ गए।

एक गम्भीर चुप्पी छा गई।

खामोशी को सेठी ने तोड़ा। उसने कहा, "राना भाई, यदि बुरा न लगे तो वह स्टूल और यह दो कुर्सियां नीचे भाभी के मायके घर भेज देना। वह लोग आज मकान बदल रहे हैं .... ।"

कौशल ने उठकर कारनस से अपनी मां की तस्वीर उठाई, जिस पर लटका हुआ हार सूख गया था । बोला, 'मेरा एक जोड़ा बूटों का था, वह भी ...यह चप्पल ज़रा फट गई है...और वह टाईम-पीस और टेबुल-लेम्प तो शायद पहले ही छोटी के पास है ।"

राना की प्रश्न-सूचक नजरों को भांप कर सेठी ने कहा, "मिस्टर मुकर्जी ने नये मुहल्ले में एक कम किराए वाला मकान ले लिया है... तुम्हें बताया ही होगा । वह हमें एक कमरा अलग दे रहे हैं । मिसिज़ मुकर्जी की हठ है, कि हम लोग उनके साथ ही रहें । मैं मंझली को हिन्दी पढ़ाऊंगा और कौशल छोटी को इंटर की तैयारी में सहायता देगा...गोपाल !" उसने ज़ोर से पुकारा, "कहां मर गए ? भले मानस, जल्दी करो ! कुछ बर्तन ले लो और फिर चलने की करो !"

* * * *

ज़िन्दगी, मौत और बुढ़िया

पीला झुरियों भरा चेहरा, पोपला मुंह, बिना पलकों के बहती हुई गंदी आंखें, सफेद हल्की पीलिमा लिये खुले रूखे बाल, फटी-पुरानी कमीज़, टूटी हुई जूती, टेढ़ी-मेढ़ी हथलठिया।

किन्तु इस पर भी बुढ़िया एक क़यामत से कम न थी!

मेरे अपने घर के पास, दुलारी दाई के दरवाज़े के बाहर, दीवार पर उलटा हाथ और हाथ की पीठ पर माथा टिकाये, दुलारी की सास चौखट पर बैठी रहती। सुबह दफ्तर जाते और शाम को दफ्तर से लौटते, एक बार निगाह उठाकर उसकी ओर देखना मेरा नियम सा बन गया था। नव्वे वर्ष की आयु—लोग कहा करते—पति को मरे हुए साठ वर्ष हो गए। दो बेटों को मरे हुए तीस वर्ष हुए। अन्तिम पुत्र, दुलारी दाई का पति, दस वर्ष पूर्व पत्नी की बदचलनी के कारण उसे और मां को छोड़ गया। "बुढ़िया फिर भी जीती है।" एक बार राम दयाल करियाना विक्रेता ने कहा, "बाबू जी, न जाने

क्यों जी रही है यह बुढ़िया ! इसे तो मर जाना चाहिए था। कछुवे की उम्र भोग रही है। कौन है अब इसका ? पति मर गया, बेटे गये, दुलारी दूर से दुतकारती हैं। रोटी तक तो मुहल्ले से मांग कर खाती है। दो कदम चल नहीं सकती। चार चार घंटे नाली पर बैठी रहती हैं। न जाने क्यों जी रही है बुढ़िया !"

दीनानाथ ने कहा। रामदयाल ने कहा। फिर एक बार कृष्णलाल बजाज ने समर्थन किया—"कितनी गंदी है, बाबू जी ! आप तो दफ्तर चले जाते हैं। मैं कभी कभी दिन में घर पर ही होता हूं। सिर उठाने की तो शरीर में शक्ति नहीं। किन्तु ज़बान कैंची की तरह चलती है। अधनंगी सी नाली पर बैठकर गंदगी करती रहती है। मेरी घरवाली ने कपड़े पहनकर बैठने को कहा तो बेचारी की शामत आ गई। मेरी तो सात पीढ़ियों को गाली देती रही। क्या किया जाये ? दुलारी से कोई गिला करे भी तो क्या ? उसे तो यह आप चैन नहीं लेने देती।"

सुबह दफ्तर जाते, शाम को दफ्तर से लौटते, बुढ़िया पर निगाह पड़ती। धरती का बोझ है, दिल कहता, अब सचमुच इसे मर जाना चाहिये। इसे यदि कोई कहे कि यह किसी की आई में मर जाये तो यह कितनी खुश हो। मौत इसके लिए मुक्ति है। जिन्दगी तो एक अनवरत यातना है। एक एक सांस के लिए कितने कष्ट में है. एक एक दिन कैसे गुज़रता है इसका ! सुबह कटोरा लिये चाय मांगने च्यूंटी की सी चाल से मेरे घर आ रही हैं तो दोपहर को दो रोटी और सालन के लिए दीनानाथ की चौखट पर है। बेटा मां की कैंची सी ज़बान और पत्नी की विमुखता से तंग आकर भाग गया है। न मालूम जीवित भी है या नहीं। यह किस लिए जी रही है ? प्रायः इसी सोच में मग्न रहता। रात को पढ़ने में व्यस्त होता तो दूर से बुढ़िया की कांपती हुई लेकिन आरे की तरह तेज़ आवाज़ सुनाई देती।

बुढ़िया दुलारी और उसके किसी ग्राहक को गालियां सुना रही होती। फटकार भी देती तो सात पीढ़ियों तक ......'अरी कंजरी...ये करतूतें ? मेरा बेटा खा लिया ! तेरे ये लच्छन !" पढ़ने से तबीयत उचाट हो जाती। बुढ़िया है या क़यामत, नव्वे वर्ष की होने को आई। इसे किसी की आई क्यों नहीं आ जाती ?

अचारज घराना— एक नहीं, मुहल्ले में दस अचारज घराने हैं। अचारज—जिन में मुर्दों का कफ़न तक दान में ले लेना उचित होता है। जिनका किसी घर में आना तो दरकिनार, घर के सामने से गुज़रना भी मनहूस समझा जाता है। जो अपने घरों में अपनी चारपाइयां सदैव उलटे रुख खड़ी किये रखते हैं ताकि शहर में मौतें अधिक हों, बीमारी फैले, आग लगे, क्रिया-कर्म अधिक हों, दान अधिक मिले। विभाजन के पश्चात् जब हम यहां आये तो किसी को भी अपने नये पड़ौसियों के बारे में ज्ञान नहीं था, इसलिए जब कुछेक मास के बाद श्रीमती जी ने बताया कि हमारा घर चारों ओर से अचारज लोगों के घरों से घिरा है और ये हर नई सुबह मरने वालों के घरों से क्रिया-कर्म की नई चारपाइयां रज़ाइयां और अन्य सामान लिये आते हुए देखे जाते हैं, तो बड़ा अफसोस हुआ। मकान अलाट हुआ तो कहा ! लेकिन फिर सोचा, क्या अन्तर पड़ता है। परिचय, संबन्ध अथवा मित्रता तो बनाये ही बनते हैं। हम उन्हें ज्यादा बुलाएंगे ही नहीं। दस वर्ष बीत गये। अचारज लोग आपस में लड़ते-झगड़ते, खुश या नाराज़ रहते, हमें कोई सरोकार नहीं था। इस अवधि में उनकी लड़कियां लड़के जवान होकर ब्याहे गये, जो बच्चे हुए वे बड़े हो गये, लेकिन हम सामाजिक रूप से उनसे दूर रहे।

अचारज घराना.... दुलारी का पति शहर छोड़ कर चला गया तो उसका धंधा चमक उठा। उसकी बिरादरी में सब उसके लच्छन जानते थे, इसलिए वह खामोशी से ही बिरादरी से निकाल दी गई।

अब श्मशान पर उसकी बारी न रखी जाती । लेकिन उसकी सास बदस्तूर एक सदस्या थी । हर पन्द्रह दिन के बाद उसकी बारी का आया हुआ क्रिया-कर्म का सब सामान उसे मिलता । कुछ नकद पैसे भी होते । नई चारपाइयां, रजाइयां और बर्तन बिक जाते । हर महीने बीस-पच्चीस की आमदनी हो जाती । उसे श्मशान पर जाने की भी जरूरत नहीं थी । रिश्ता का एक भतीजा ही सब काम भुगता देता और अपना हिस्सा खरा कर लेता । इसलिए बुढ़िया का गुज़ारा ठीक ही था । उसके पास अज़ारबन्द से बन्धे हुए सौ डेढ़ सौ रुपये भी थे और कानों की बालियां भी थीं । दुलारी से वह बराबर की टक्कर लेती । एक एक की चार सुनाती । लेकिन अपने सब से छोटे पोते से वह सदा प्यार करती । दस बारह वर्ष का लड़का जिस में दुनियां के सब अवगुण थे, दादी से हमेशा बेरुखी से पेश आता । पीटने से भी संकोच न करता । किन्तु बुढ़िया फिर भी उसे चार आठ आने खर्च के लिए दे देती ।

एक दिन दफ्तर से लौटते हुए बुढ़िया को चौखट पर न पाया । घर में प्रवेश किया तो देख कर हैरान रह गया कि बुढ़िया सामने दालान में पीढ़े पर बैठी अपनी तेज कैंची-सी आवाज़ में श्रीमती से से बातें कर रही थी । बड़ी हैरानी हुई ! इससे पूर्व रोटी सालन या चाय के लिये आती भी तो दरवाज़े पर ही बैठ कर आवाज देती । मैं अन्दर गया, कपड़े उतार दिये, श्रीमती जी आई तो उन्होंने अपने आप ही कहा, "बेचारी को मेरठ से अपने बेटे की चिट्ठी आई है ‥ वह वहां बीमार है‥ मुझसे पत्र लिखवाने आई थी, मैंने कुछ आटा वाटा भी दे दिया है ।"

दिन बीतते गये । अब मैं प्रायः उसे अपने घर पर बैठे देखता । श्रीमती जी भी अब उसके साथ उदार-हृदयता से काम लेती । आटा देतीं... अपने पुराने कपड़े देकर उसे तन ढांपना सिखातीं । चाय बनाकर

लोटे के बर्तन में उसके सामने रखतीं . कभी कभी नकद पैसे भी दे देतीं । वह पीढ़े पर बैठी, अपनी हथलठिया पर हाथ की पीठ से सर टिकाये, कतर कतर बातें किये जाती । उसके इधर आने के कारण एक दो बार दुलारी भी उसकी अनुपस्थिति में इधर आई ताकि श्रीमती जी उसके बारे में कोई गलत धारणा न बना सकें। घर आता तो कभी कभी ये सब रोचक बातें सुनने में आ जातीं ।

एक दिन मालूम हुआ कि दुलारी का छोटा लड़का घर से भाग गया है और दादी की संदूकची से पन्द्रह रुपये भी निकाल कर ले गया है । यद्यपि वह स्वयं बुढ़िया द्वारा लालित-पालित था और वह उसकी ज्यादतियों को भी सहन कर लेती थी, लेकिन आज वह सुबह से ही बक रही है। न कुछ खाया है, न कुछ पिया है। दुलारी से रुपये मांगती है, किन्तु वह नाक पर मक्खी नहीं बैठने देती । अन्तत: श्रीमती जी ने कुछ औरतों से मिलकर पन्द्रह रुपये पूरे कर दिये तो शान्ति हुई ।

फिर एक दिन मालूम हुआ कि दुलारी के कान से गिरा हुआ एक कांटा गुम हो गया है। और वह अपनी सास पर चोरी का इल्जाम लगा रही है। लेकिन बुढ़िया किसी को भी अपना बक्स खोल कर नहीं देखने देती और दुलारी की एक गाली का उत्तर दस से देती है।

कई दिन उपद्रव रहा और जब तक कि दुलारी को अपने कांटे का टूटा हुआ हिस्सा चारपाई की पांयती से न मिला, खामोश न हुई। हर दूसरे दिन एक न एक झगड़ा खड़ा होता । कभी दुलारी बुढ़िया पर हाथ उठा बैठती तो वह चीख चीख कर आधा शहर इकट्ठा कर लेती । मुहल्ले वालों का सुख चैन हराम हो जाता । ऐसे ही एक मौके पर बुढ़िया की बाईं कलाई टूट गई । फिर जो हंगामा हुआ तो पूरे पन्द्रह दिन के बाद शान्ति हुई । बुढ़िया का एक हाथ हमेशा के लिए बेकार हो गया । वह उस पर मैली कुचैली पट्टी बांधे रखती, सेंक करती रहती—हल्दी और घी की मालिश करती रहती ।

बुढ़िया में श्रीमती जी की ये दिलचस्पी आखिर रंग लाई और घर में से छोटी-मोटी चीजें गुम होने लगीं। पहले चमचे और कटोरियां गुम होती थीं, फिर एक दिन चांदी का गिलास चोरी हो गया। हज़ार बार कहा कि यह बुढ़िया की ही कारस्तानी है। दुलारी ने तो चमचा भी बुढ़िया के कपड़ों से लाकर दिखा दिया। लेकिन श्रीमती न मानीं। एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा नौकर बदलती गईं। बुढ़िया अपने बारे में चूंकि मेरी राय अच्छी तरह से जानती थी, इस लिए मेरे सामने कम ही आती। लेकिन मेरी अनुपस्थिति में वह कई कई बार आती। श्रीमती जी की कुर्सी या पलंग के पास पीढ़े पर बैठी रहती। चुप रहना उसने सीखा ही न था। इसलिए मैं हैरान था कि श्रीमती जी उसकी बातें कैसे सुन लेती हैं।

कई दिन बीत गये। एक शाम को आया तो देखा, बुढ़िया अपने घर के सामने मिट्टी में बैठी थी। दुलारी के घर रोना धोना हो रहा था। दरी बिछी थी। अचारज बिरादरी के कुछ लोग बैठे थे। बुढ़िया खोखली आवाज़ में रो रही थी और बार बार सर पटक रही थी। पूछने पर मालूम हुआ कि उसका बेटा, दुलारी का पति, मेरठ में स्वर्गवास हो गया है। पुराना अफीमची था। एक दिन ज्यादा खाली और सुबह मृत पाया गया। बेटे की मृत्यु के बाद बुढ़िया की हालत उथल-पुथल हो गई। ऐसा मालूम होता कि उसकी जिंदगी का एक सार-गर्भित लक्ष्य भी समाप्त हो गया है। उसका भतीजा अब श्मशान से प्राप्त हुआ सामान स्वयं ही पचा जाता। वह उसे हज़ार बार गालियां सुनाती लेकिन अब बेबस थी। उसका चेहरा और सुकड़ गया, झुरियां गहरी हो गईं, कमर और झुक गई। शक्ति बिल्कुल जवाब दे गई। मुट्ठी भर हड्डियों का ढांचा सा रह गई। अलबत्ता हमारे घर आती तो पहले की तरह लाठी टेकती, च्यूंटी की गति से चलती हुई आती, आध घंटा, घंटा बैठती, मतलब की बात करती, चीज़ लेती और चली जाती। दुलारी अब निर्बाध अपना धंधा करने लगी थी।

इसलिए बुढ़िया अपनी सभी विवशताओं तथा दुर्बलताओं के बावजूद बदले के तौर पर अपनी गालियां और ताने ज्यादा तेज़ कर देती थी। आश्चर्य होता था कि इस हड्डियों के ढांचे में इतनी आग कैसे भरी पड़ी है।

घर में बात होती तो मैं कहता—"धरती का बोझ है। यह मर क्यों नहीं जाती ? इस ज़िन्दगी से क्या मौत अच्छी नहीं ?"

और श्रीमती जी अत्यन्त दार्शनिक ढंग से सिर हिलाती—हां, बुढ़िया का अब कौन है ? बेटा भी मर गया। दो पोते हैं...बड़ा तो पागलों की तरह सारा दिन बैठा मक्खियां मारता रहता है। अलबता एक छोटा है—चार बार घर से भाग चुका है—दादी को कभी कभी पीटता भी है। लेकिन मरने को किस का जी चाहता है ?"

इन्फ्लुएंज़ा फैला तो सारा शहर ही उसकी लपेट में आ गया। बुढ़िया गंदगी से लथपथ पड़ी रहती थी। एक दिन सुबह मालूम हुआ कि बुखार में बेहोश पड़ी है, साथ ही न मालूम क्या खा लिया है। हैज़े की सी हालत है। उस दिन तो मैंने भी जरा कठोर शब्दों में श्रीमती जी को उसके समीप जाने से मना किया। "अब बुढ़िया मर जायेगी"—सभी ने कहा। दो दिन बीत गये तो बेहोश बुढ़िया को कैम्प के हस्पताल में ले जाने को म्युनसिपेलिटी की गाड़ी आई। नाक पर कपड़ा चढ़ाए म्युनिससिपेलिटी के दो मेहतरों ने उसे उठाकर गाड़ी में लिटाया। गंदगी से लथ-पथ अर्द्ध-नग्न बेहोश बुढ़िया को लिए हुए जब गली से निकल गई तो जैसे सब में जान पड़ गई, जैसे बुढ़िया की अर्थी उठ गई हो। दुलारी ने भी सुख का सांस लिया। और वह उस रात काफी देर तक बुढ़िया की कोठरी में कुछ ढूंढती हुई देखी गई। उसका छोटा बेटा, बुढ़िया का पाला पोसा पोता उसके साथ ही लालटेन लिये था।

दो दिन के बाद दुलारी का छोटा बेटा भी बीमार पड़ गया

लेकिन उसी शाम म्युनिसिपेलिटी वाले बुढ़िया को वापस छोड़ गये। मैंने देखा वह उसी तरह दीवार से माथा टिकाए, आंखे बन्द किये दुलारी के दरवाज़े पर बैठी है। उसके कपड़े ज्यादा फटे हुए हैं। अब उस में ज़िन्दगी की एक मामूली सी लौ शेष है—एक क्षीण सा धागा है जो न मालूम कब टूट जाए। दुलारी की गालियों का जवाब भी अब उसके पास नहीं, खांस रही है। गर्दन की कमजोर रगें फूल जाती हैं। आंखें बाहर निकल आती हैं, लेकिन जिये जा रही है। "अमेरिका में तो डाक्टर लोग ऐसे बेचारे मरीज़ों को जहर भी देते हैं।" अमेरिका से लौट कर आये नय्यर साहब ने उसके बारे में कहा। वे उन्हीं दिनों गली के दूसरे मोड़ पर बने हुए मकान में आये थे।

दुलारी का छोटा लड़का इतना सख्त बीमार हुआ कि जान के लाले पड़ गये। बुढ़िया को इस लड़के से बहुत मुहब्बत थी, सभी जानते थे मैंने भी जाते हुए सहानुभूति के तौर पर पूछा—"माई, लड़के का क्या हाल है ?"

बुढ़िया ने बेनूर आंखों से मेरी ओर देखा। उसमें शायद पहचानने की शक्ति भी नहीं रही थी। बोली, "बड़ा बे-आराम है...सारी रात तड़पता रहता है—मेरे राम, तू बच्चे को सुख दे !"

मैं चला गया। काम से लौटा तो मालूम हुआ, बच्चे की हालत पहले से अधिक खराब है। ग्यारह बरस का खेलता कूदता बच्चा; इन्फ्लुएंजा हुआ और ऐसा हुआ कि दस बजे के लगभग उसका देहान्त हो गया।

दुलारी के घर में कुहराम मचा तो मैं भी उठकर गया। बुढ़िया उसी प्रकार दरवाज़े से सिर टिकाए खामोश, आंसू बहा रही थी। ऊंचा रोने और स्यापा करने का उसमें सामर्थ्य न था। बीमारी ने रही-सही शक्ति भी निचोड़ ली थी। मैं गया तो रामदयाल और कृष्णलाल आदि अन्य लोग भी आ गए।

"बुढ़िया बेचारी..."कृष्ण लाल ने कहा—"यह दिन भी इसे देखना था। काश! इस मासूम बच्चे की बजाए यही मर जाती।"

बुढ़िया ने शायद बात सुन ली। उसने दीवार से सिर उठाया। लाठी का सहारा लेकर हज़ार दिक्कतों से उठकर खड़ी हुई। हमारे सामने आई। बेनूर आंखों से हमें देखा। मैंने समझा अब वह लाठी छोड़कर गिर पड़ेगी। सर पटक पटक कर रोयगी। मौत के लिए गिड़-गिड़ाएगी। लेकिन उसने अपना पोपला मुंह खोला और फिर हम पर गालियों की बौछाड़ आरम्भ कर दी।

मुझे अन्दर मौत के कुहराम और बाहिर जिन्दगी के कुहराम में अन्तर करना कठिन हो गया।

* * * *

नई पौध और बूढ़े वृक्ष

जब छोटा लड़का भागता हुआ घर में दाखिल हुआ तो शमशेर सिंह का दिल धक् से रह गया। उसके दिल में से किसी ने पुकार कर कहा, जिस बात का डर था, वही हुई। उसने उठ कर कांपते हुए हाथों से कछैरे के ऊपर ही पाजामा पहन लिया, दाढ़ी खुजलायी और फिर झिझकते-झिझकते चौबारे की खिड़की से नीचे आँगन में झांका।

छोटा लड़का काकू मां से कुछ जल्दी-जल्दी खुसर-पुसर कर रहा था। उसका चेहरा धूप से तमतमाया हुआ था। पांव से घुटनों तक टांगें कीचड़ में लथपथ थीं। मालूम होता था जैसे वह कहीं दूर से भाग कर आ रहा हो। शमशेर सिंह ने दिल-ही-दिल में प्रार्थना की, "हे वाहगुरु, अमरीक को सुमति दे।" फिर जैसे मुसीबत के क्षणों को कुछ देर टालने के लिए उसने सिर फिर अन्दर कर लिया। पाजामा पहने हुए वह बिस्तरे पर बैठ गया। उसका शरीर यों कांप रहा था जैसे उसे ज़ोरों का मलेरिया होने लगा हो।

"बीस वर्षों की नौकरी पर पानी फिर जायेगा।" उसने जैसे अपने आप से कहा, "कितना ज़िद्दी है !"

उसने फिर सोचा, बचपन में भी तो जिस बात पर अड़ जाता था, मनवा कर ही छोड़ता था। किन्तु अब ? अब टक्कर सरकार से है ! सरकार से टक्कर ? उसके मस्तिष्क में अपने दफ्तर के बड़े अफ्सर सरदार लाल सिंह का चेहरा उभर आया । तीखी बराउन पटियाला शाही पगड़ी, काली मेहंदी लगी मूंछें, घनी दाढ़ी और सेहतमन्द सुर्ख चेहरा ! अजीब बात थी कि वह जब भी 'सरकार' या अपने महकमे का खयाल करता था, उसके मस्तिष्क में केवल अपने ही आफ़िसर का नक्शा उभरता था। जैसे उसका अपना अफ़सर ही सारी 'सरकार' का प्रतिनिधित्व करता हो। उसने फिर दिल में कहा, "हे वाहगुरु ! अमरीक को सुमति दे !" और फिर जैसे अनजाने में ही उसने एक साप्ताहिक पाठ की मन्नत मान ली।

"एक बार अमरीक इस झगड़े से निकले, मैं गुरु की वाणी का साप्ताहिक पाठ रखवाऊंगा।"

उसने दृढ़ निश्चय से सामने दीवार पर लगे गुरु गोविन्द सिंह के कैलेण्डर की ओर देखते हुए ऊंची आवाज़ में कहा।

सीढ़ियों पर किसी के चढ़ने की आवाज़ सुनाई दी। शमशेर सिंह अनजाना-सा बन कर बिस्तर पर लेट गया। क्षण भर के लिए वह भूल गया कि वह पाजामा पहने हुए ही बिस्तर पर लेट गया है और उससे सफेद चूड़ीवाले पाजामे की आब खराब हो जायेगी। किन्तु अब ऊपर आने वाला आख़िरी सीढ़ियों पर था। उसने नज़र उठा कर देखा— काकू था। उसका सबसे छोटा बच्चा, सात साल का, सेहतमन्द और हंसमुख काकू। जो रंग और शरीर के लिहाज़ से उसी जैसा था। सात वर्ष की उमर में ही उसका कद चार फुट से कुछ ऊपर बढ़ गया था और लगता था कि जवान होते-होते वह बाप की भांति ही छः फुट का

मज़बूत आदमी बन जायगा। मां ने शायद ऊपर भेजने से पूर्व उसका मुंह धुला दिया था। टांगों पर से कीचड़ ग़ायब था। कपड़े भी झाड़ दिये गए थे।

काकू ने दूर से ही कहा, "अमराक भा को लारी में ले गये!" क्षण भर के लिए शमशेर को महसूस हुआ जैसे उसके दिल की धड़कनें रुक गई हों। फिर बिस्तर से उठते हुए उसने पूछा, "जेल को?"

काकू ने थूक निगलते हुए स्वीकारात्मक उत्तर दिया। वह बहुत खुश था। उसका चेहरा तमतमाया हुआ था। आंखें खुशी से चमक रही थीं। उसे कदाचित् वह दृश्य भूल नहीं रहा था, जब उसके 'भा' अमरीक को पुलिस के सिपाहियों ने गेट से उठा कर बलपूर्वक लारी में बैठाया और हड़तालियों ने उस पर पुष्प-वर्षा कर दी थी और ज़िन्दाबाद के नारे लगाये थे। उसने खुशी से नाचते हुए शमशेर सिंह को बताया कि किस तरह पहले पुलिस के बड़े अफ़सर ने आकर उसके 'भा' को सत सिरी अकाल बुलाई और तदन्तर मिन्नत से लारा में बैठने को कहा और किस तरह लोगों ने पुलिस वालों को धक्के दिये और अमरीक 'भा' को उठाते समय लोगों ने सरकार 'मुर्दाबाद' और अमरीक 'ज़िन्दाबाद' के नारे लगाये। ज़िन्दाबाद' और मुर्दाबाद' जैसे इस युग के लोकप्रिय नारे बन गये थे और काकू उनके अर्थ खूब जानता था। वह खुशी से उछलने लगा तो शमशेर सिंह को बहुत क्रोध आया। उसने उठ कर उसे झिड़का, "चुप रह बदमाश!" और जब काकू सहम कर बैठ गया तो शमशेर सिंह की कंपकपी लौट आयी। अब क्या होगा? उसने जैसे शून्य से प्रश्न किया। पुलिस, सी. आई. डी., न्यायालय, मुकदमा और फिर सज़ा। नौकरी से खतरा। उसकी अपनी नौकरी भी तो उसके पुत्र के कारण खतरे में पड़ गई थी।

काश! उसने सोचा, काश! वह अमरीक को बी. ए. तक न पढ़वाता और फिर यदि पढ़वाना ही था तो किसी प्राइवेट बिजनेस में

डाल देता। बैंक की नौकरी और फिर वह भी सरकारी बैंक की नौकरी। इससे बढ़कर जिम्मेदारी की नौकरी और क्या होगी ? अच्छी तनख्वाह, इज्ज़त भी, रोब भी, काम का समय निश्चित था। वेतन हर मास की इकतीस को ही मिल जाता था। लाट साहब का बच्चा! उसने अपने दिल में लड़के को कोसा, बात ही क्या थी ? यही न कि बैंक एजेन्ट ने एक क्लर्क को गुस्ताख़ी की बिना पर मुअत्तल कर दिया था और जब कुछ और क्लर्क डैपुटेशन की शकल में उस तक गये थे तो उस ने उन सब की वेतन-वृद्धि भी रुकवा दी थी। इतनी-सी ही तो बात थी। और इसके परिणाम-स्वरूप इतना शोर-शराबा? हड़ताल, गेट पर धरना और अन्त में भूख हड़ताल !

उसने जैसे सामने खड़े अमरीक से कहा, "बच्चा जी, दो दिन जेल में रहोगे तो नानी याद आ जायगी । आत्महत्या की कोशिश का जुर्म बनाया गया होगा।"

काकू कदाचित् पुन: नीचे भाग गया था। शमशेर उठ खड़ा हुआ। उसने फिर खिड़की में से झांक कर आंगन का जायज़ा लिया। काकू की मां जूती पहन कर कहीं जाने के लिये तैयार हो रही थी। दरवाज़े में कुछ और औरतें भी खड़ी थीं। हल्की-हल्की खुसर-पुसर जारी थी। शमशेर सिंह को सोचकर तसल्ली हुई कि कम-से-कम अपने घर में उसका इतना रोब और दबदबा है कि ऊंची आवाज़ में बात नहीं की जा सकती। ड्योढ़ी में और भी स्त्रियां थीं। बाहर गली में भी होंगी। शमशेर सिंह समझ गया कि ये सभी बैंक-एजेन्ट की कोठी पर 'स्यापा' करने जा रही हैं। ऐसे हर रोज़ होता था। कोई नयी बात नहीं थी। शमशेर सिंह खीज गया।

लानत है ! उसने दिल में कहा। उसे अपनी नौकरी के वे दिन याद आये जब वह महाराजा की व्यक्तिगत कचहरी में अदना मुहर्रिर की हैसियत से भर्ती हुआ था। साढ़े बाइस रुपये मासिक वेतन और

सरदारी की उपाधि। उसे वह दिन भी याद था जब बाजार से गुजरते हुए किसी व्यक्ति ने उसे पहली बार सरदार साहब कहकर बुलाया था और उसके सारे शरीर में रीढ़ की हड्डी से उठ कर हर्ष की एक लहर सी दौड़ गयी थी।

वे दिन भी क्या थे, उसने सोचा, जब जनता सरकारी नौकरों के सामने और सरकारी नौकर जनता के सामने आंख तक नहीं उठा सकते थे। उसे वह दिन भी याद था, जब उससे आयु में दस बरस और क़द में तीन फुट छोटे हैड-मुहर्रिर ने किसी गलती पर उसे मां-बहन की नंगी गालियां निकालते हुए दवात उठा कर उसके मुंह पर दे मारी थी और उसने चूं तक न की थी। बल्कि दवात उठकर बड़ी इज्ज़त से मेज़ पर रख दी थी और हाथ जोड़कर कहा था, "आप माई-बाप हैं, हजूर!"

उसे वे दिन अच्छी तरह याद थे जबकि हैड-मुहर्रिर उसके छः फुट तीन इन्च क़द और बेढंगे शरीर की मुनासबत से उसे 'ऊंट' कहा करता था। शुरू-शुरू में वाक़ई शमशेर सिंह को अपने इस नाम से क्रोध सहित अप्रसन्नता हुई थी और जब छोटे से क़दवाला नाटा मुहर्रिर उसे ऊंट कहता था तो उसका जी चाहता था कि उसे उठा कर ज़मीन पर पटक दे, या और नहीं तो जवाबी तौर पर बौना या नाटा ही कह दे। किन्तु धीरे-धीरे नौकरशाही की बोझिल चक्की में उसका व्यक्तित्व पिसता गया और समय आया कि वह अपने अफ़सरों के मुख से ऊंट की उपाधि सुन कर खुश होता। उनके घर जाकर उनके बच्चों का जी बहलाता। छः फुट तीन इन्च का शमशेर सिंह चिउटी जितना भी अस्तित्व न रखता था।

हाय, वे दिन और ये दिन! अब वह खुद हैड-मुहर्रिर था। किन्तु दिन ही तो बदल गये थे। वह किसी कल्र्क को तो क्या, चपरासी तक को गुस्से में गाली नहीं दे सकता था। उनसे घर का कोई

काम नहीं करवा सकता था। सब्जी तक खरीद कर लाने को नहीं कह सकता था। अपने अफसरों के सामने अलबत्ता वह अब भी पन्द्रह वर्ष पहले का शमशेर सिंह था। अफसर के कमरे में जाकर हाथ जोड़ कर खड़े रहना उसे बुरा नहीं लगता था। अफसर की कोठी पर नज़राना भेजना भी वह नहीं भूलता था और यही कारण था कि अफसर उस पर कृपालु थे। यही कारण था कि वह तरक्की करते-करते पन्द्रह वर्ष में हैड-मुहर्रिर बन गया था।

किन्तु अब ? अब ?? उसने कोई पचासवीं बार अपने आप पर यह प्रश्न किया। वह दफ्तर किस मुंह से जायेगा ? यों भी जब अमरीक ने दो और साथियों के हाथ बैंक के गेट पर भूख हड़ताल की थी, उसका बाहर निकलना हराम हो गया था। उसने उसी दिन से दफ्तर से बीमारी की छुट्टी ले ली थी। किन्तु अब तो मामला ही दूसरा था। शीघ्र ही पुलिस अमरीक के कमरे में तलाशी लेने आती होगी। यह खयाल आते ही वह फिर उठकर बैठ गया। उसके माथे पर स्वेद बिन्दु झिलमिलाने लगे। दाढ़ी के बालों में खुजली होने लगी। वह पलंग से नीचे उतर आया। उसने बूट पहने, सिर पर पगड़ी रखी। आईने में उसे अपने चेहरे पर गहरी स्याह झुर्रियों की मौजूदगी का एहसास हुआ। वह बूढ़ा हो चला है, उसने खुद को बताया, उसमें हिम्मत कम हो गई है।

हिम्मित कम हो गई है, उसने दिल ही दिल में दुहराया। किन्तु अमरीक उसका अपना पुत्र है। वह एक बार हिम्मत करके उससे जेल में मिले, बुरा-भला समझाए। अपनी खानदानी इज्ज़त, शराफ़त और नौकरी से पृथकता के डर का वास्ता दे। उसे कह दे कि एक ओर उसका घर है, उसका बाप है, मां है, और भविष्य है। और दूसरी ओर उसकी हड़ताल, नौकरी से पृथकता और जेल ! शायद वह मान जाए... शमशेर सिंह मुस्कराया। उस अन्धेरे में प्रकाश की हल्की सी किरण दिखाई दी। यदि अमरीक सिंह मान जाये और क्षमा मांग ले तो सब

बखेड़े दूर हो जायें। वह खुद बैंक के एजेन्ट से मिल लेगा। एजेन्ट उस का कई वर्षों से परिचित है। अमरीक पीछे हट जाये तो हड़ताल खतम हो सकती है। वह उससे इस बात की गारन्टी ले लेगा कि रिहाई और नौकरी पर बहाली के बाद उसके विरुद्ध किसी प्रकार का एक्शन न लिया जाये। वह नीचे आंगन में उतर आया।

वह बाहर जाने को तैयार ही हो रहा था कि उसे ड्योढ़ी में किसी के पांव की आहट सुनाई दी। उसने दरवाज़ा खोला। बाहर दो-तीन नवयुवक खड़े थे। उनमें से एक खद्दरपोश सिक्ख नवयुवक ने आगे बढ़कर कहा, "मैं बैंक एम्प्लाईज़ एक्शन कमेटी का सदस्य हूं। आपका अमरीक सिह जिला हवालात में है। कृपा करके उसके कपड़े दे दीजिए।"

शमशेर सिह का जर्द चेहरा देखकर उसने कहा, "आप चिन्ता न कीजिए। हमारा 'हीरो' जेल से विजय प्राप्त करके आयेगा। आपको उस पर गर्व होना चाहिये।"

शमशेर सिह का जी चाहा कि वह कोने में पड़े हुए बेंत से उस मुंहफट लड़के की ऐसी मरम्मत करे कि उसे नानी याद आ जाये। किन्तु उसने मुंह से कुछ न कहा। अन्दर जाकर खूंटी पर लटकते हुए अमरीक के कुछ कपड़े उतारे और उन्हें दे दिए। उनके जाने के उपरान्त वह कुछ देर के लिए आंगन में पड़ी चारपाई पर बैठ गया। उसी समय ढ्योढ़ी में से किसी ने फिर आवाज़ दी। शमशेर सिह ने देखा, उसके अपने दफ्तर का एक चपरासी था। उसके चेहरे पर जैसे स्याही सी पुत गई।

चपरासी शायद नया-नया ही नौकर हुआ था। उसने सत सिरी अकाल किया और शमशेर सिह के सामने पड़ी चारपाई पर बैठ गया। बैठते ही धीरे से बोला, "सरदार साहिब, आपको मुबारिक हो। सरदार अमरीक सिह जी जेल-यात्रा पर गये हैं। मैं नहीं जानता था किअ वह ापके सुपुत्र हैं। कितना साहस है छोटे सरदार साहिब में!

अपने साथियों के लिए कितनी सहानुभूति है उनके दिल में।"

कोई दूसरा व्यक्ति कहता तो कदाचित् शमशेर सिंह सहन कर लेता। किन्तु अपने ही दफ्तर के चपरासी के शब्द उसे यों लगे जैसे ज़हर में बुझे हुए तीर हों। उसे इन शब्दों के पीछे छिपा इनसान दोस्ती का भाव दिखाई न दिया, क्योंकि वह उससे बिल्कुल अपरिचित था। दिन भर का क्रोध चपरासी पर केन्द्रित होकर उबल पड़ा। पूर्व इसके कि वह अपनी बात समाप्त कर सकता, शमशेर सिंह ने कोने में पड़ी बेंत उठाई और बिना कुछ कहे, बिना कुछ देखे, ज़ोर से उसे खींच मारी। चपरासी खेद एवं आश्चर्य से खड़ा हो गया। क्षण भर वह यों ही अपनी भुजा सहलाता रहा। फिर जैसे वह सब कुछ समझ गया। वह पीछे की ओर मुड़ा और एक ही पल में ड्योढ़ी से बाहर हो गया।

शमशेर सिंह गुस्से से थर-थर कांपता हुआ उठ खड़ा हुआ था। "मैं बूढ़ा हो चला हूं।" शमशेर सिंह को एक बार फिर यह विचार सताने लगा।

उसका क्रोध कुछ कम हुआ। उसे चपरासी पर यों हाथ नहीं उठाना चाहिए था। वह अपनी कम-हिम्मती पर मुस्कराया, फिर खिलखिला कर हंसा। अब उसका मस्तिष्क साफ़ था। उसने ठंडे दिल से सारी बात पर ग़ौर किया। फिर वह निर्णयात्मक अन्दाज़ से उठा और बाहर निकल आया। दरवाज़ा उसने बाहर से बन्द कर दिया। घर में कोई नहीं था। किन्तु भरे मुहल्ले में क्या खतरा था? वह लम्बे-लम्बे डग मारता हुआ डिस्ट्रिक्ट जेल की ओर हो लिया। मुलाकात की इजाज़त लेने में कोई मुश्किल पेश नहीं आयेगी, उसे विश्वास था। एक बार सारी बात सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल से साफ़ करने की आवश्यकता थी। वह अमरीक को समझाएगा और उसे क्षमा मांगने पर मनवा लेगा।

डिस्ट्रिक्ट जेल पहुंच कर उसे सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल से मुलाकात की अनुमति लेने में कोई मुश्किल न हुई। जेल के बाहर वाले फाटक पर अब भी कुछ हड़ताली खड़े थे किन्तु अन्दर चुपचाप थी। वह भारी दिल लिए हुए हल्के क़दमों से आगे बढ़ा। मुलाकात का परवाना जेल मुहर्रिर को देते हुए उसने लोहे की सलाखों वाले भारी फाटक की ओर देखा, जो आधा खुला था और जिस में से जेल के कर्मचारी आ जा रहे थे। उस दरवाजे से गुजर कर एक आंगन था, जिसके चहुं ओर हवालात के कमरे थे। अमरीक उन्हीं में से किसी एक कमरे में बन्द था। मुलाकात के लिए उसे मुलाकात के कमरे में लाया जाना था।

मुहर्रिर से परवाने पर मोहर लगवाकर वह आगे बढ़ा। आधे खुले फाटक से गुजर कर आंगन में पहुंचा। कुछ हवालाती सलाखो को पकड़े खड़े थे। मुलाकाती कमरे में दाखिल होने से पूर्व उसने चहुं ओर नज़र दौड़ाई। सहसा वह रुक गया।

सामने आंगन में उसका सबसे छोटा बच्चा काकू खड़ा था। उसके हाथों में फूलों का एक हार था और वह चहुं ओर अपने 'अमरीक भा' को ढूंढ़ रहा था। चौकीदारों ने शायद उसे किसी जेल कर्मचारी का लड़का समझते हुए रोका नहीं था और वह सीधा ही अन्दर चला आया था। बच्चे ने बाप की ओर देखा। उनकी नजरें मिलीं। उसी समय काकू ने अमरीक को भी देखा जो दायीं ओर के कमरे में अन्दर से चलता हुआ सलाखों तक आ पहुंचा था। वह खुशी से चीखा और एक ही छलांग में वहां तक जा पहुंचा। उसे पिता की उपस्थिति का बोध नहीं रहा। अमरीक सलाखों के अन्दर ही बैठ गया। काकू ने अपना नन्हा सा हाथ बढ़ा कर हार अमरीक के गले मे डालने की कोशिश की। कुछ लोग उनकी ओर देखने लगे।

शमशेर सिंह ने आगे बढ़ा हुआ क़दम रोक लिया। उसने उन दोनों की ओर देखा। सात बरस का छोटा भाई बार-बार अपना हार

बड़े भाई के गले में डालने की कोशिश कर रहा था, जो लोहे की सलाखों और कपड़े की पगड़ी पर अटक-अटक जाता था।

शमशेर सिंह ने एक ठण्डी सांस ली और उलटे क़दम लौट गया।

*   *   *

खाई

पीछे से फिर किसी ने बिल्ली जैसी खर् खर् की आवाज़ निकाली। अब वह सहन न कर सका। वह अपने पांव पर इस तरह धीरे-धीरे घूमा कि ब्लैक-बोर्ड से उसका चेहरा दरवाज़े की तरफ और दरवाज़े से कक्षा की तरफ जाते हुए पूरा एक मिनट लगा। डेस्कों की मध्य पंक्ति में भोला-भाला नन्हा-सा चेहरा बड़े साहस से उसकी ओर ताकता नज़र आया। शेष सब लड़कों की नज़रें अपने डेस्कों पर जमी थीं। उसकी निगाहों ने अत्यन्त निपुणता, सतर्कता और आत्म-विश्वास से एक बार कक्षा का निरीक्षण किया। सब लड़के शीलवान और भोले नज़र आ रहे थे। परन्तु फिर भी उसे संशय हुआ कि वह सब चोरी-छिपे नज़र बचाकर उसकी ओर देखने का प्रयत्न कर रहे हैं। मानो उसके चेहरे से अपनी शरारत की प्रतिक्रिया देखना चाहते हों।

बायें हाथ की पंक्ति के अन्तिम डेस्क पर छोटी-छोटी आंखों वाला देव-सरीखा लड़का एक टांग डेस्क से बाहर निकाले स्वभावानुसार उसे

हिला रहा था और उसके हाथ कोट की जेबों में थे। मास्टर ने उसकी ओर देखा। उसी क्षण उसने भी आंखें उठायीं। उसकी टांग हिलनी बन्द हो गयी। उसने कोट की जेबों से हाथ निकाल लिये और सुकड़ कर बैठ गया। उसने एक लम्बा सांस लिया और ब्लैक-बोर्ड की ओर मुड़ आया।

"दसवीं कक्षा का ए सैक्शन...आज आप पहली बार वहां पढ़ाने जा रहे हैं, मिस्टर गुरबाई..." —उसके मस्तिष्क में शायद पचासवीं बार हेड-मास्टर के शब्द गूंज उठे। —"यह सैक्शन हमारे स्कूल के माथे पर अवज्ञा का कलंक है। कोई टीचर वहां आराम से नहीं पढ़ा सकता। शोर मचाना, आवाज़े कसना, मास्टरों को तंग करना, यह इन लड़कों का मशग़ला है। कोशिश के बावजूद हमें मालूम नहीं हो पाता कि लड़कों के लीडर कौन हैं। हमने एक-एक करके इस सैक्शन के आधे से अधिक लड़के दूसरे सैक्शनों में भी भेज दिये और नये लड़के वहां भेजे, परन्तु परिणाम कुछ न निकला। आप अपने तजुरबे और कामन-सेंस से उन्हें राह पर ले आयें.. जहां तक हो सके, सजा न दें। आप इस स्कूल में नये हैं। इसलिये कह रहा हूं।"

और अब वह क्लास में था!

सूबा सरहद के इस कस्बे में केवल एक ही स्कूल था। उसने स्कूल में क़दम रखते ही बड़े बलिष्ट, डील-डौल वाले और इतने बड़े-बड़े लड़के देखे थे जिन्हें इस समय तक कालिज की पोस्ट-ग्रैजुएट कक्षाओं में होना चाहिए था, परन्तु फिर भी वह आठवीं और हाई-क्लास की तुस्तकें लिए फिर रहे थे। उनके चेहरों पर सेहत की लाली थी, और आंखों से एक बलिष्ठ लेकन मासूम आत्मा झांकती हुई दिखाई देती थी। वह ठेठ पश्तो में बात करते-करते उसे देखते ही एक-दम रुक जाते थे। और रास्ता बनाते हुए दो पंक्तियों में खड़े हो जाते थे। हेड-मास्टर के दफ्तर तक पहुंचते-पहुंचते लगभग सब लड़कों ने उसे

देख लिया था, और उसने उन्हें आपस में कानाफूसी करते हुए भी सुन लिया था, "यह नया मास्टर है !"

"नया मास्यर...! अस्तापा..."। एक लड़के ने अपनी भाषा में गाली देते हुए मुठ्ठियां भींच ली थीं। परन्तु वह बिना कुछ कहे ही आगे बढ़ गया था।

और अब वह क्लास में था !

बोर्ड पर रेखा-गणित के प्रमेय की अधूरी आकृति को पूरा करने के लिए उसने चाक उठाया। आकृति पूर्ण करने से पूर्व उसने कक्षा की ओर एक दृष्टि डाली। कोई चेहरा भी ब्लैक-बोर्ड की तरफ उठा हुआ न था। सब अपने डेस्कों पर देख रहे थे, हालांकि अभी तक उनकी पुस्तकें बन्द थीं। बायें हाथ की पंक्ति के चौथे डेस्क पर बैठा हुआ लड़का शीघ्रता से कागज के एक टुकड़े पर कुछ लिख रहा था।

"यू...!" उसने ठंडी और सम्भली हुई आवाज में पुकारा—"तुम...खड़े हो जाओ !"

सब लड़कों की निगाहें उसकी ओर उठ गयीं। उसकी आंखों के कोणों से छिछलती हुई निगाह ने उसे बताया कि कुछ लड़के होठों में मुस्करा रहे हैं। ...लड़का खड़ा हो गया। पेंसिल उसके हाथ में थी। "क्या कर रहे थे ?"

लड़के ने ब्लैक बोर्ड की ओर देखते हुए सरलता से कहा—"आपकी शकल उतार रहा था।"

वह एक क्षण के लिए इन शब्दों के गुप्त अर्थों को न समझ सका और ब्लैक-बोर्ड की ओर देखने लगा। परन्तु शीघ्र ही वह समझ गया और मुस्कान की हल्की-सी रेखा उसके अधरों पर खिंच गयी। मुस्करा कर उसने कहा—"सिट डाऊन !"

यह उसका प्रयोजनीय फारमूला था। शरारत के अवसर पर

पकड़े जाने वाले लड़कों को झट से झूठ बोल देने पर वह दंड नहीं दिया करता था । लड़का अब बैठ गया था । अब उसका मूड भी धीरे-धीरे अच्छा हो रहा था। कक्षा में प्रवेश करते हुए जो घबराहट उस पर सवार हो गई थी, अब धीरे धीरे उतर रही थी । उसने सोचा—"आखिर यह भी लड़के हा तो हैं, शरीर बड़ा होने से क्या होता है ? दिमागी तौर पर तो बच्चे ही हैं।" उसके होठों पर मुस्कराहट फैल गई।

"आपका नाम, मास्टर साहब ?"—एक लड़का दायीं ओर से उठा। वह बिल्कुल छोटा-सा था। उसका सिर मुंडा हुआ था और उस पर छोटी सी ऊनी टोपी थी । उसकी नाक लाल थी और भंवों के घने बालों के नीचे उसकी छोटी-छोटी आखें चमक रहीं थीं। "हां मास्टर जी, आपका नाम ?"—कई लड़कों ने एक साथ कहा।

एक क्षण के लिए उसे कुछ न सूझा । फिर वह धीरे-धीरे चलता हुआ उस लड़के के समीप पहुंचा और मुस्करा कर उसके कन्धों को थपथपाया। ठोडी से पकड़ कर उसका चेहरा ऊंचा किया।

"मेरा नाम .. ?"

लड़का भय, संशय और अविश्वास के मिले जुले भावों से उसे देखता रहा। कुछ क्षण दोनों की यही स्थिति रही । छोटा-सा लड़का अब भय से कांपने लगा था। सब लड़कों की निगाहें नये मास्टर की ओर थीं। वह दम साधे किसी शीघ्र ही घटित होने वाली घटना की प्रतीक्षा कर रहे थे। वह पीछे की ओर मुड़ा।

"मेरा नाम जैड. के. गुरबाई है ।"—उसने उनकी ओर देखते हुए कहा—"और मैं तुम्हारा नया टीचर-इन्चार्ज हूं।"

"टीचर इन्चार्ज को इंगलिश में कैसे बनाता है, मास्टर साहब ?" मध्य की पंक्ति से एक बड़े डील-डौल वाला लड़का उठा। वह बहुत बलिष्ठ दिखाई देता था। उसकी शलवार के टुब्बे चढ़े हुए थे लेकिन

उसकी कमीज़ धारीवाल बोस्की की थी । जिससे नजर आता था कि वह किसी अच्छे धनाढ्य का लड़का है ।

"क्या मतलब ?"—उसने धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए पूछा । वह इनसे डरेगा नहीं, उसने सोचा । वह क्षण निकट आ रहा है जब सदा के लिए यह निर्णय हो जायगा कि वह उनसे पढ़ने के लिए आया है या पढ़ाने के लिए—

"टीचर इन्चार्ज का स्पेलिंग पूछा रहा है ।" उसके साथ के एक लड़के ने बैठे हुए कहा ।

"ओह !" मुस्कान उसके अधरों पर बिखर गयी । उसने वापिस आकर ब्लैक-बोर्ड पर शब्द लिख दिये । परन्तु साथ ही कहा—"यह तो तुम्हें अपने दूसरे मास्टर से पूछना चाहिए, जो तुम्हें अंग्रेज़ी पढ़ाते हैं ।"

उसे कोई उत्तर न मिला । वह उनसे बातें करने को तत्पर न थे । उनकी आंखों में उसके लिए अविश्वास और संशय के मिले-जुले भाव थे, जो कभी-कभी घृणा में परिवर्तित हो जाते थे । उसने सोचा—वह उन सब पर यही प्रयोग करके देखेगा ।

आज पहले दिन से ही उन्हें प्रेम और निष्ठा से जीतने का प्रयत्न करेगा ।

"पहले दो पीरियड मेरे ही हैं ।"—उसने पुनः अपनी कुर्सी के पास आकर कहा—"मैं चाहता हूं कि हम सब आपस में परिचित हो जाएं । अब मैं तुम्हारी हाजिरी लूंगा, ताकि तुम सबके नाम भी मुझे मालूम हो जाएं । क्यों ठीक है ?" उसकी नज़रें उस बड़े लड़के पर थीं जिसने टीचर-इन्चार्ज का स्पेलिंग पूछा था । वह उसे इन लड़कों का सरदार समझ रहा था ।

लड़का बुत की तरह बैठा रहा । सब चुप थे । उसने मेज़ पर से उपस्थिति का रजिस्टर लिया, फिर उसने बैठने से पूर्व कुर्सी पर

निगाह डाली। वहां लम्बे-लम्बे काँटों वाले दस बारह लसूड़े पड़े थे।

वह समझ गया। यह भी उसे सताने का एक तरीका था। यदि वह इन लसूड़ों पर बैठ जाता तो उनके लिए एक अच्छा खासा तमाशा बन जाता। उसने लसूड़े उठाकर मेज़ पर रख दिये। लेकिन फिर भी बैठने से पहले कुर्सी को खींच कर देखा। उसके चारों पाये सलामत थे। उसने नाम पुकारने आरम्भ किये—"शरीफ़ मुहम्मद"—"यस सर" "साहब खां" "यस सर" "काले खां" "यस सर" "इकबाल अहमद" "यस सर"। प्रत्येक नाम पर वह दृष्टि उठा कर उत्तर देने वाले लड़के को देखता, और मस्तिष्क में उसका नाम सुरक्षित रखने का प्रयत्न करता। परन्तु दस-बारह नामों के बाद वह उकता गया। उसने सोचा पहले दिन ही सब कुछ असम्भव है। धीरे-धीरे वह उन सबसे परिचित हो जायगा। अब वह तेज़ी से नाम पुकारने लग गया। "अज़ीज़ अहमद" "यस सर" अब्दुल समद" "नो सर"। वह अगला नाम पुकारने ही लगा था कि चौंक पड़ा। नो सर ? यह कौन बदमाश है ? उसने नज़र उठा कर देखा। बीच वाली पंक्ति में नन्हा सा भोले-भाले चेहरे वाला लड़का खड़ा था। उसकी निगाहें सामने थीं और मुखमण्डल भाव-शून्य था। सम्भवत: अब्दुल समद इसी का नाम था।

"तुमने कहा है, नो सर ?" उसने पूछा। परन्तु उसकी आवाज़ भारी थी।

"नो सर !" लड़के ने फिर कहा।

लड़के का मुखमण्डल अब भी भाव शून्य था। दायें ओर की पंक्ति के कुछ लड़के मुंह छिपाये हंस रहे थे। पीछे के डेस्कों से खुसर-पुसर की आवाज़ें आ रही थीं। वह खड़ा हो गया। एकदम निस्तब्धता छा गयी। वह नीचे उतर कर आगे बढ़ा और उस छोटे लड़के के पास चला गया।

"नाम ?" उसने पूछा।

"अब्दुल समद !"

"नो सर किसने कहा था ?"

लड़के फिर चुप थे। वह लौट आया। इस बार वह कुर्सी पर नहीं बैठा। छोटे लड़के से उसने कहा—"बैठ जाओ !"

हाजिरी फिर आरम्भ हो गयी। परन्तु अब उसका मूड बिगड़ चुका था। उसने तेज़ी से नाम पुकारने आरम्भ कर दिये। "गुलाम मुहम्मद' 'यस सर' 'शरफुद्दीन' 'यस सर'।

इस बार बड़ा लड़का बोला था। उसने यह नाम मस्तिष्क में सुरक्षित रखा। वह उसे काबू में कर लेगा—उसने सोचा। हाजिरी खत्म हुई तो उसने पूछा "मानीटर कौन है ?"

फिर सब चुप थे।

"हूं..."—उसने कहा—"मैं चाहता हूं कि मेरे पीरियडों का मानीटर तुम सब की मर्जी से चुना जाए। तुम किसी एक का नाम पेश करो !"

लड़कों को उसकी इस बात पर अविश्वास-सा हुआ। साधारणतः नये मास्टर आते ही पहले दिन अपना बैंत तोड़ने का प्रयत्न करते थे। वह पहले दिन से ही डंडे के ज़ोर से विद्यार्थियों पर रोब बिठाते थे। परन्तु इस मास्टर के तरीके भिन्न थे। वह स्वयं भी दूसरे मास्टरों से भिन्न था। लड़के अविश्वास से उसे देखकर नापने की कोशिश कर रहे थे और वह देख रहा था कि लड़के कितने पानी में हैं।

"शरफुद्दीन !" लड़का खड़ा हो गया। "शरफुद्दीन के मानीटर बनने में किसी को एतराज़ है ?"

निस्तब्धता ! चुपचाप, लड़कों की नजरों में फिर अविश्वास झलक रहा था। शरफुद्दीन ने उसकी ओर देखकर कहा—"अम पहले मनीटर था।"

उससे गलती हुई। लेकिन अब इसके सिवा चारा ही क्या था। गलती तो हो चुकी थी।

"अच्छी बात है"। ––उसने कहा––"अपने फर्ज को अच्छी तरह से निभाओ।"

रजिस्टर बन्द करके वह फिर ब्लैक-बोर्ड की ओर आ गया–– "तुम्हारी किताब में इस प्रमेय का नंबर २४ है। इस प्रमेय की शकल में सबसे पहले एक त्रिकोण ए. बी. सी. दिया गया है। कोण बी. समकोण है..."

"मिआऊं!"

वह फिर भी तेजी से मुड़ा नहीं। धीरे से मुड़कर उसने चाक को मेज पर रख दिया और फिर दोनों हाथ पतलून की जेबों में डालकर और मेज का सहारा लेकर टेढ़ा-सा खड़ा हो गया।

"शरफुद्दीन! कौन बोला था?"

"बिल्ली सर!" उसने नियमपूर्वक उत्तर दिया।

"बिल्ली? बिल्ली कौन?"

"गुरबा सर–एक लड़के का नाम है।"

पीछे बैठे लड़कों में से किसी ने कहा––"गुरबाई!"

एक कहकहा पड़ा।

वह सटपटा गया। परन्तु उसने प्रकट न होने दिया। तीन-चार कदम आगे बढ़कर वह उस डैस्क के समीप खड़ा हो गया। जहां से 'मियाऊं की आवाज़ आयी थी। डैस्क पर तीन लड़के थे। अब तीनों बड़े मासूम दिखाई दे रहे थे।

"गुरबाई मेरा नाम है!" उसने कहा––"क्या तुम्हें यह नाम पसन्द नहीं?"

अब फिर खामोशी थी। लड़के उसकी ओर नहीं देख रहे थे। उनकी नज़रें डैस्कों पर केन्द्रित थीं। अध्यापक और विद्यार्थियों के बीच एक खाई थी।

उन्हें उस पर विश्वास नहीं था।

वह इस खाई को भर देगा। उसने निर्णय किया और फिर प्रेम से उसने उन तीनों के कंधों को थपथपाया—"अगर तुम्हें यह नाम पसन्द नहीं है तो मैं और रखे लेता हूं!" यह कह कर उसने एक कहकहा लगाया।

परन्तु किसी ने भी उस कहकहे में उसका साथ न दिया। वह सब चुप थे। भरे हुए कमरे के कांपते वातावरण में यह कहकहा ऐसे गूंजा जैसे खोखले ढोल पर लात मार दी गयी हो।

वह वापस चलता हुआ शरफुद्दीन के डैस्क पर आ खड़ा हुआ—"शरफुद्दीन! मैं चाहता हूं कि आज सिर्फ बातें की जायें। तुम्हारा क्या ख्याल है?"

शरफुद्दीन की त्योरी चढ़ी रही। उसने कठोरता से कहा—"तुम टीचर-इन्चार्ज हो!"

वह चकित हुआ। परन्तु उसने कुछ कहना उचित न समझा। एक दो मिनट वह चुपचाप खड़ा रहा। फिर सहसा पीछे की ओर मुड़ा। मेज और ब्लैक बोर्ड के पास से चलते हुए वह दरवाजे के पास गया। कक्षा के सब लड़के सांस रोके बैठे थे। उसने दरवाजा बन्द करके अन्दर से कुंडी चढ़ा दी। अब जिस समय वह मुड़ा तो उसका चेहरा कठोर था। लड़कों के चेहरों पर शक और अविश्वास की रेखाएं गहरी हो गयी थीं।

उसने कहा—"मैं यह प्रमेय समझाने लगा हूं। अगर अब किसी ने कोई शरारत की तो मुझ से बुरा कोई न होगा। जब मैं समझा चुकूंगा तो तुम्हें यह शक्ल अपनी कापियों पर उतारनी होगी।"

अपने आदेश की प्रतिक्रिया देखने के लिए उसकी नजरों ने चेहरों का निरीक्षण किया। शरफुद्दीन होठों ही होठों में मुस्करा रहा था। दाएं हाथ की पंक्ति के अन्तिम डैस्क वाला लड़का फिर टांग हिला

रहा था। उसकी छोटी-छोटी आंखें चमक रही थीं। मध्य पंक्ति वाला भोला लड़का अब भी साहस से उसकी ओर देख रहा था।

उसने चाक लेने को हाथ बढ़ाया। उसी समय उसके सिर पर कुछ आकर लगा। बादाम का छिलका था।

—"कौन था ?" वह गरजा।

सन्नाटा छा गया ! वह क्रोध से कांप रहा था। सहसा उसकी निगाहें मेज़ पर रखे रूल पर पड़ीं, फिर उसे हैडमास्टर के शब्द स्मरण हो आये। उसने दोनों हाथ पतलून की जेबों में डाल लिये।

उसी समय पहली घंटी बजी। गणित का पीरियड समाप्त ! उसने सोचा अब उसे इतिहास पढ़ाना पड़ेगा। लेकिन विषय उसका अपना ही है, क्यों न वह रेखा-गणित ही पढ़ाता रहे। उसने कहा--"किताबें न बन्द करो। मैं आज ज्योमेट्री ही पढ़ाऊंगा।"

खुसर पुसर की आवाजें आयीं तो शरफुद्दीन ने कहा—"पीरियड हिस्ट्री का है, सर !"

"मैं जानता हूं !" उसने तीखी आवाज़ में कहा—"लेकिन मैं ज्योमेट्री ही पढ़ाऊंगा।"

"तुम टीचर इन्चार्ज है !" शरफुद्दीन ने फिर अनपढ़ पठानों के स्वर में कहा। उसने चाक उठा लिया और ब्लैक-बोर्ड के पास आकर लिखने लगा। किसी ने बहुत धीरे स्वर में कहा—"गुरबाई मियाऊं!"

"सामने आओ !" उसने गरजते हुए कहा—"कौन है, सामने आओ !"

फिर वही खामोशी। कांपती हुई निस्तब्धता। जैसे अभी अभी बम फट जायेगा।

"शरफुद्दीन, तुम यहां आकर खड़े हो जाओ और देखो, कौन शरारत करता है !" उसने घर की चाबी चोर के पास ज़मानत रखने मे सुरक्षा समझी।

शरफुद्दीन आकर खड़ा हो गया" सर—मैं ?"—दायीं पंक्ति में से एक लड़के ने खड़े होकर दो उंगलियां सामने कर दीं जिसका अर्थ था कि वह पेशाब करने जाना चाहता है।

—"नहीं, बैठ जाओ !"—

लड़का बैठ गया, खुसर पुसर फिर शुरु हो गई। अब अन्तिम डैस्कों पर कुछ लड़के बातें भी कर रहे थे। उसने रूल लेकर ज़ोर से मेज़ पर मारा—"खामोश !"

लेकिन रूल की चोट से मेज़ पर रखे लसूड़े उछल पड़े और उनमें से एक उसके मुंह पर आ लगा।

एक कहकहा फिर पड़ा।

अब उसका क्रोध सीमा लांघ गया। उसका शरीर कांपने लगा। शरफुद्दीन अब भी होंठों ही होंठों में मुस्करा रहा था। —"स्टैंड अप !" उसने दो हंसते हुए लड़कों को आज्ञा दी—"स्टूल पर खड़े हो जाओ।"

दोनों लड़के खड़े हो गये। एक बार पुनः खामोशी छा गयी।

सहसा एक लसूड़ा ब्लैक-बोर्ड पर आकर लगा। फिर दूसरा उसके बाज़ू पर और फिर उसके देखते-देखते कई लसूड़े दायें बायें और सामने से आये और ब्लैक-बोर्ड के विभिन्न भागों पर लगे।

चार लड़के उसकी निगाह में थे—"बाहर आओ शैतानो !" उसने चारों को बाहर निकाल लिया—"गेटआऊट !" उसने स्वयं दरवाज़ा खोल दिया।

चारों लड़के चुपके से बाहर चले गये। उसने दरवाज़ा फिर बन्द कर लिया। —"अब ?"—वह ज़ोर से बोला—"और कौन कौन थे शरफुद्दीन ?" परन्तु उसे कोई उत्तर न मिला। उसने आध मिनट उसके उत्तर की प्रतीक्षा की। फिर उसके सामने जाकर खड़ा हो गया। दोनों दम साधे एक-दूसरे की ओर देख रहे। शरफुद्दीन टस से मस न हुआ। वह फिर ब्लैक-बोर्ड की तरफ आ गया।

—"सर—मैं ?" दो उंगलियां सामने किये वही लड़का फिर उठा ।

वह उसके समीप चला गया—"क्या नाम है तुम्हारा ?"

"बिल्ली सर—गुरबा !"

एक कहकहा फिर पड़ा । अब उससे सहन न हो सका । उसने एक भरपूर थप्पड़ लड़के के गाल पर रसीद किया । लड़का गिरते-गिरते बचा ।

"बुज़दिल !" उसे किसी का सांस अपनी गर्दन पर महसूस हुआ —"छोटे लड़के को मारता है—?"

वह एकदम मुड़ा । उसका प्रतिद्वंदी अब टांग हिलाने वाला वह लड़का था जिसकी छोटी-छोटी आंखें अब तेज़ी से चमक रही थीं । वह उसके पीछे अत्यन्त सन्तोष से खड़ा था । उसके दोनों हाथ कोट की जेबों में थे ।

एक क्षण तक दोनों ने एक दूसरे को घूरा । पैंतीस वर्ष का अध्यापक और अठारह वर्षीय छात्र !

उसने हाथ उठाया, लेकिन लड़के ने पहला वार किया । मुक्का उसके कन्धे पर पड़ा और वह पीछे हटता हुआ दीवार के साथ जा लगा ।

एक कहकहा फिर पड़ा ।

उसकी आंखों के सामने क्रोध से धुन्ध छा गई । अब...अब ? उसे शारीरिक तौर पर इस लड़के से निपटना पड़ेगा । इस अपमान के बाद वह हैड-मास्टर के शब्द भूल गया । लड़का बिल्ली जैसी चालाकी के साथ दूसरे वार के लिए आगे बढ़ रहा था । उसके पीछे दीवार थी । दायें-बायें के डैस्क अब खाली हो चुके थे और कक्षा के सब लड़के एक तरफ एकत्र थे । उसने देखा, शरफुद्दीन अब भी होठों में मुस्करा रहा था ।

एक दम वह बिजली जैसी फुर्ती के साथ लड़के पर जा पड़ा। लड़का यह बार साफ बचा गया और वह अपने ही ज़ोर में डैस्क से जा टकराया। उसकी कूहनी में प्रलय का दर्द उठा, लेकिन उठकर वह फिर आगे बढ़ा।

उसके वार को लड़के ने अपने सीने पर सहा। परन्तु वह भी काफी मज़बूत था। दो तीन घूंसों के बाद वह गुथम-गुथा हो गये। चारों ओर खामोशी थी। केवल उनकी सांसों की आवाज़ थी जो अब ठहर-ठहर कर धुंकनियों की तरह चल रहे थे।

एक वार में ही वह फर्श पर गिर गये। पहले वह ऊपर था, फिर लड़का आया। अब भी लड़ाई के नियम नहीं छोड़े गये थे। घूंसों के सिवा और किसी वार से काम नहीं लिया जा रहा था। लौटते-पोटते वह दीवार से ब्लैक-बोर्ड और फिर दरवाज़े तक आ गये।

उसे अपने मुंह में खून का स्वाद महसूस हुआ। लड़के का घूंसा बला का सख्त था। उसे अनुभव हुआ जैसे उसकी शक्ति जवाब दे रही हो। लड़का उसके ऊपर था और अन्धा-धुन्ध मुक्कों की वर्षा कर था। अंधों की तरह एक हाथ चला। लड़के के कान पर दड़ा हुआ घूंसा एक क्षण के लिए उसे बेसुध कर गया। उसके हाथ फिर आगे बढ़े। लड़के का गला उसके हाथ में था।

लड़ाई एक नये दौर में आ गयी थी। उसने ज़ोर लगाया। कष्ट सहन न करते हुए लड़का एक ओर लुढ़क गया। अब वह उसके ऊपर था।

दरवाज़ा उसी तरह बन्द था। एक घूंसा—दो—तीन। प्रत्येक वार पर लड़का चीख उठता। उसकी नाक और मुंह से खून बह रहा था। तब उसने अनुभव किया जैसे वह स्वयं बेहोश होता जा रहा हो।

उसने बेहोश लड़के को छोड़ दिया और खड़ा हो गया। उसकी नाक से रक्त की धारियां बह रही थीं। वह हांप रहा था लेकिन

उसकी आंखों से आग की लपटें निकल रही थीं। "अब और कोई-?" बैठी हुई आवाज में उसने चीख कर कहा।

लड़के खामोश थे। शरफुद्दीन ने भी मुस्कराना बन्द कर दिया था। एक निस्तब्धता थी! शून्य, सन्नाटा! बम फट चुका था।

वह ज़ोर से खिल-खिला कर हंसा।

लड़का धीरे-धीरे होश में आ रहा था। पहले वह तनिक हिला। फिर उठकर बैठ गया और फिर मुस्कराने लगा। उसके कान नाक और मुंह से अब भी खून बह रहा था। एक लड़का उठा—"मैं पानी ले आता हूं।"

जब वह बालटी भर कर पानी ले आया तो शरफुद्दीन ने दरवाज़ा बन्द कर दिया। शरफुद्दीन ने पहले उसका मुंह धुलाया। एक लड़के ने उसके कपड़े झाड़े। इस बीच में लड़कों ने डैक्स ठीक कर दिये और चुपचाप बैठ गये। जख्मी लड़का धीरे धीरे मुस्कराता रहा। जब शरफुद्दीन उसका भी मुंह धुला चुका तो उसने उठकर कपड़े झाड़े और अपने स्थान पर जाकर बैठ गया।

शरफुद्दीन उसकी ओर मुड़ा। पहले की तरह उनकी नजरें मिलीं, फिर शरफुद्दीन ने कहा—"तुम हेड-मास्टर से रिर्पोट करेगा?" उस की आंखों में अविश्वास और घृणा की झलक थी।

"नहीं!" उसने निर्णयात्मक स्वर से कहा—"यह हमारा आपस का मामला है।"

"यस सर!" एकदम शरफुद्दीन का स्वर बदल गया और वह बड़ा आज्ञाकारी बन गया—"यस सर! अब आप पढ़ाइये, और अगर किसी ने अब शरारत की तो उसका कचूमर निकाल दूंगा। आप बेफिक्र रहिये, सर, आपके पीरियड में कोई शरारत नहीं करेगा।"

उसने चाक उठाने से पूर्व कक्षा की ओर दृष्टि उठाई। लड़के अपनी कापियां-पेन्सिलें सम्भाल रहे थे। उनकी नज़रों में अविश्वाश न था। उसके लिए सम्मान था और प्रेम था।

उनके बीच की खाई भर गई थी।

टोटका

चार दोस्तों में बैठ कर जब वह टूटी-फूटी हिन्दी में बात करता तो बहुत अच्छा लगता। अपनी बातचीत के बीच में वह कभी-कभी पंजाबी के शब्दों का भी प्रयोग कर देता, पर उनका उच्चारण इस प्रकार करता कि उसके मित्रों के ओठों पर बरबस एक मुस्कान फैल जाती। और यही मुस्कान उस समय ज़ोर की हंसी का रूप धारण कर लेती, जब वह किसी पंजाबी मुहावरे का प्रयोग किसी ऊटपटे अर्थ में कर देता।

लड़कियों में भी वह काफी लोकप्रिय था। एक बार शांता ने मुन्नी को बताया था कि सेन गुप्ता उसे इसलिए बहुत अच्छा लगता है क्योंकि वह 'ख़' का 'ख', 'स' का 'श' और 'फ़' का 'फ' उच्चारण करता है। मुन्नी एक सिख लड़की थी और उसे इस बंगाली युवक सेन गुप्ता की बीड़ी पीने की आदत से सख्त नफरत थी, पर मुन्नी ने भी यह स्वीकार किया कि सेन गुप्ता उसे अच्छा लगता था—उसकी टूटी-फूटी

बोली ही मुन्नी को सबसे ज्यादा पसन्द थी ।

नरेशचन्द्र सेन गुप्ता उस औद्योगिक बस्ती के यूनियन आफिस का सेक्रेटरी था और उसी मिल में क्लर्की करता था । तेईस-चौबीस साल का दुबला-पतला, नर्म-नाज़ुक और सांवला, यह बंगाली युवक न जाने पंजाब के जल-वायु में कैसे जी रहा था ! अपने स्वदेशी लिबास, धोती-कुर्ता और चप्पल में जब वह मिल जाने के लिए गली में बाहर निकलता, तो वहां पड़ी चारपाइयों पर बैठी हुई औरतों और रेंगते हुए मैले-कुचैले बच्चों के हजूम में ऐसा मालूम होता था, जैसे किसी ने रात के बासी खाने के ढेर पर ताजा और गरम जलेबी रख दी हो ।

चश्मे के शीशों को कुरते के छोर से साफ करता हुआ वह अपनी आंखें झपका-झपका कर अपने आस-पास का दृश्य देखता । दरवाजे पर बैठ कर बर्तन साफ करती हुई किसी अल्हड़ पंजाबी लड़की से उसकी आंखें यदि टकरा जातीं तो वह मुस्करा कर होठों ही होठों में न जाने क्या कहता । और दूर बैठी हुई वह लड़की शायद इसे अपनी सुन्दरता की प्रशंसा समझ कर मुस्करा पड़ती । बर्तनों पर उसके हाथ और तेज़ी से चलने लगते । दुपट्टा वक्ष से सरक जाता और देर तक वह न जाने क्या सोचती रह जाती ।

गली में ऐसी कई लड़कियां थीं । दुलारी थी, जो अब मैट्रिक में पढ़ रही थी और जिस का विचार मैट्रिक के तुरंत बाद ट्रेनिंग कोर्स पास करके कहीं शिक्षिका हो जाने का था । राज थी, जो बहुत सुन्दर थी और अपने छोटे-छोटे मैले-कुचैले बहन-भाइयों को नहलाने-धुलाने में इतनी व्यस्त रहती थी कि स्वयं को संवारने का उसे समय ही न मिलता था । कृष्णा थी, जो अत्यन्त चतुर थी, फिर भी किसी ने बैसाखी के मेले में उसके गले का हार कतर लिया था । और तब उसकी मां ने उसे इतना पीटा था कि वह गली में किसी को मुंह दिखाने लायक न रही थी । इनके अतिरिक्त मोहिनी, कमला और

रमा थीं। रमा के बारे में तो यह भी कहा जाता था कि उसने कभी किसी लड़के की ओर आंखें उठा कर भी न देखा था। पर ये सभी सेन गुप्ता के धोती, कुर्ता, चप्पल, चश्मा और बोलने के विचित्र ढंग पर फिदा थीं।

सेन गुप्ता सुबह साढ़े सात बजे से दो बजे तक मिल में काम करता था। दो बजे लौटता, अपना खाना स्वयं ही पकाता और खा-पी कर सो रहता था। पांच-साढ़े-पांच बजे यूनियन आफिस में जा बैठता। मज़दूर अपनी-अपनी शिकायतें ले कर आ जाते। उनसे निपटता। अंधेरा होते ही चाय बना कर पीता, और अपनी छोटी-सी मेज के पास कुर्सी पर बैठ कर पढ़ने लगता। कभी-कभी जब कोई मीटिंग होती, तो उसे बाहर भी जाना पड़ता। यह उसका रोजाना का कार्य-क्रम था और इस में पेट और दिमाग के अलावा और किसी तीसरे धंधे के लिए वक्त ही न था।

दाल, भात, मछली, गोश्त और कभी-कभी एक-दो चपातियां—इतना ही सेन गुप्त का भोजन था। इसमें कमी या बढ़ती भी होती रहती थी। कमी उसके अपने बजट और समय पर निर्भर थी और कम ही होती थी। पर बढ़ती जब-तब ही होती रहती थी। और जब बढ़ती होती थी, तो सेन गुप्ता के लिए अपना प्रति दिन का निश्चित भोजन करना कठिन हो जाता था। यह बढ़ती गली की उन लड़कियों की मेहरबानी से ही होती थी जो सेन गुप्ता से प्रभावित थीं। प्राय: ऐसा होता कि वह अपना दाल-भात तैयार करता होता और किसी गीत की धुन गुनगुनाता होता, तभी दरवाजे पर एक हल्की-सी आहट होती, और एक सुन्दर-सा प्यारा बच्चा भीतर दाखिल होता। बच्चे के एक हाथ में थाली होती और दूसरे हाथ में एक बडा-सा गिलास। वह लजाया-सा सेन गुप्ता के पास आता और थाली उसके सामने रख कर तथा गिलास उसे पकड़ा कर भाग जाता। सेन गुप्ता पहचान

जाता कि वह बच्चा रमा का भाई था। थाली में खालिस पंजाबी 'मिस्सी' रोटियां होतीं और गिलास में छाछ होती जिस में मक्खन का एक बड़ा-सा डला तैर रहा होता।

या ऐसा होता कि सेन गुप्ता सुबह नहा-धो कर कंघी से बाल संवारता होता। दरवाज़े से सात-आठ वर्ष की नटखट लड़की माला घुसती। वह चुनरी के नीचे कुछ छिपाये होती। हंसती हुई नज़र से उसे देखती और कहती—"आयी हूं—खीर-बताशे लायी हूं!"

सेन गुप्ता जान-बूझ कर न बोलता। वह जानता था कि माला राज की छोटी बहन है और उसने चुनरी के नीचे दही-पकौड़ों की प्लेट छिपा रखी है।

माला फिर कहती—"आमी बंगला भाषा सीखा, बाबू?" और फिर सेन गुप्ता की नकल उतारते हुए इतने ज़ोर से हंसती कि दही प्लेट में से छलकने लगता। और जब सेन गुप्ता फिर भी चुप रहता, तो उसकी इस चुप्पी पर माला अपने हाथ के अंगूठे वाले नाखून को दांतों में अड़ा कर कहती—"अच्छा जी, नहीं बोलते? तो हमारी तुम्हारी कुट्टी। हम राज बहन से कह देंगे!"

और तब सेन गुप्ता को हार मार कर प्लेट लेनी ही पड़ती।

इस तरह बड़े, मीठे पकवान, मिस्सी रोटी, मक्की की रोटी, पालक का साग, कच्चे-पक्के छोले (चने) आदि सभी पंजाबी भोजन सेन गुप्ता तक जा पहुंचते। वह उन्हें थोड़ा-थोड़ा चखता। ये सब भोजन नये होते हुए भी उसके लिए कोई आकर्षण न रखते क्योंकि इन से उसे शान्ति न मिलती। ये सब खाने उसके दैनिक बंगाली खाने से भिन्न होते थे और इनके होते हुए भी उसे दाल-भात-मछली सब कुछ स्वयं ही पकाना पड़ता था। असल में वह चूल्हा सुलगाते-सुलगाते तंग आ गया था और ये चीज़ें उसे चौके-चूल्हे से मुक्ति नहीं दे सकती थीं।

शायद यही कारण था कि लड़कियों की इस मेहरबानी के बावजूद भी किसी की ओर उसका झुकाव न था। यों भी वह बस्ती में बहुत रूखा व्यक्ति समझा जाता था। सभी कहते थे कि सेन गुप्ता क्वांरा होते हुए भी किसी की बहू बेटी पर बुरी नजर नहीं डालता। और इसी लिए जब लड़कियां अपने छोटे भाई-बहिनों के हाथ खाने की चीजें उसके पास भेजवा देतीं, तो उनके मां-बाप को इसमें कोई एतराज़ न होता।

सेना गुप्ता के स्वभाव से परिचित होने पर भी लड़कियां हिम्मत न हारतीं। वे एक से एक अच्छा खाना बना कर भेजतीं। शुद्ध पंजाबी मिठाइयां बना-बना कर छोटे बहन-भाइयों के हाथ उस तक पहुंचाती। नमकीन मिठाइयां और मीठी जलेबियां बनाने में वे एक दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न करतीं, परन्तु सेन गुप्ता सब से एक हाथ दूर ही रहता। और उस समय लड़कियों के दुख का ठिकाना न रहता, जब इतने चाव से भेजी हुई उनकी चीजें ज्यों की त्यों या आधी-सी वापस लौट आतीं।

हां, कृष्णा उनमें से कुछ अधिक चतुर और होशियार थी। घर में उसकी मां और वह, दो ही थीं, कोई पुरुष था नहीं। जब मां शाम को बधाई देने या किसी को दुख या शोक में सान्त्वना देने घर से निकल जाती, तो कृष्णा अपने दरवाज़े पर आ बैठती और टकटकी लगाकर यूनियन के आफिस की ओर देखती रहती। सेना गुप्ता उसे दिखाई देता तो पल्लू से सिर ढांप कर वह सिर झुका लेती, और जब वह पास से गुजरने लगता तो पलकें उठा कर कहती—"नमस्ते जी!"

"नमस्ते!" कहता हुआ वह गुजर जाता।

कृष्णा के पिता की मृत्यु हो चुकी थी। उसका बड़ा भाई पास के किसी शहर में काम करता था, पर घर कम ही आया करता था। प्रति मास जब डाकिया कृष्णा की मां के नाम मनीआर्डर लाता, तो कृष्णा

नंगे-सिर ही भागती हुई सेन गुप्ता को गवाही देने के लिए बुला लाती। डाकिया के जाने के बाद वह कुछ देर तक माँ के सामने ही उसे बातों में उलझाये रखती। स्वयं एक बात कहती और उसकी कई सुनती। बातें रोजाना के जीवन के विषय में होतीं। खाने की चीजों, कपड़े की की महंगाई, नये-नये टैक्स; मिल-मालिकों के हथकंडे और मजदूरों की एकता आदि के बारे में।

फिर सेन गुप्ता जब अपने चश्मे के शीशे साफ करते हुए चलने लगता, तो कृष्णा एक बार फिर पुकार कर कहती—"नमस्ते जी [''

"नमस्ते, नमस्ते !" कहता हुआ सेन गुप्ता मुड़ कर एक बार मुस्कराता, फिर आगे बढ़ जाता।

... ...

धीरे धीरे कृष्णा कुछ सफल होती नजर आयी। अब सेन गुप्ता जब-तब उनके घर भी आने-जाने लगा। वह घंटों वहां बैठा रहता। कृष्णा की मां को उसने सूत कातने का काम मिल से दिलवा दिया था और इससे उनको अच्छी आमदनी हो जाती। उनको सेन गुप्ता के वहां आने पर कोई आपत्ति न थी, क्योंकि मुहल्ले की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियां उसे एक चरित्रवान युवक समझती थीं। बस्ती के सभी युवक सेन गुप्ता के मित्र थे और मिल में सभी काम करने वाले उसे श्रद्धा दृष्टि से देखते थे। उसकी भलमनसाहत और योग्यता में सभी को विश्वास था। कृष्णा के घर उसके उठने-बैठने पर दूसरे किसी ने भी ध्यान न दिया।

अब सेन गुप्ता प्रायः कृष्णा के घर बैठा नजर आता। रात के दस-दस बजे तक वह चारपाई पर बैठा, मां बेटी को देश भर की बातें सुनाता रहता।

कृष्णा के चेहरे पर अब हर वक्त एक मीठी हंसी रहती। उसने गली की लड़कियों में उठना बैठना कम कर दिया। दरवाजे पर बैठ

कर वह सेन गुप्ता का प्रतीक्षा करती रहती। जब वह आता, तो सिर पर दुपट्टा ओढ़ कर और हाथ जोड़ कर शुद्ध पंजाबी लहजे में वह कहती—"नमस्ते, जी !" और उसे अन्दर ले जाती। कभी-कभी मां की अनुपस्थिति में दोनों अन्दर चले जाते, आंगन में बिछी चारपाई पर एक साथ बैठ जाते, और बातें करते। फिर कृष्णा उठकर उसके लिए कुछ पकाने लगती और सेन गुप्ता अपने स्वाभाविक लहजे में बातें करता रहता।

ये सब बातें गली की दूसरी लड़कियों से छिपी न रह सकीं। आपस में उन की एक मीटिंग हुई, जिसमें राज, कमला और मोहिनी ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। राज बहुत सुन्दर थी, इसलिए उसे इससे सब से अधिक ठेस पहुंची थी। यों भी सेन गुप्ता की सेवा में उसने कोई कसर उठा न रखी थी। समय-समय पर उसे तरतराते हुए घी में पालक का साग बना कर भेजा था। दीवाली के दिनों में खांड के खिलौने और चने के भुरभुराते मरुंडे भी भेजे थे। कई बार दही-बड़े, पकौड़े और मीठे पूड़े तल कर भेजे थे। उसे सेन गुप्ता से सख्त शिकायत थी।

कमला और मोहिनी ने भी समर्थन किया कि सेन गुप्ता का कृष्णा की ओर आकर्षित होना सरासर अनुचित था क्योंकि वे दोनों भी कृष्णा से कहीं अधिक सुन्दर थीं और कपड़े पहनने का ढंग उनको आता था। फिर वे दोनों भी सेन गुप्ता को जब-तब पकवान भेजती रही थीं। अभी पिछले ही महीने घर वालों की चोरी से कई स्वेटरों में से थोड़ा-थोड़ा ऊन बचा कर कमला ने एक स्वेटर बुन कर सेन गुप्ता को भेजा था जिसे अब वह पहने फिरता था। इसलिए कृष्णा से उसकी यह घनिष्ठता बहुत बुरी बात थी।

कृष्णा पर उसकी सहेलियों ने फबतियां कसीं। एक-दो लड़कियों ने उसकी खुशकिस्मती पर उसे बधाई भी दी और हंसते-हंसते उसकी

सफलता का राज उससे पूछा—आखिर कौन-सा टोटका था जिसके बल पर उसने सेन गुप्ता जैसे रूखे आदमी को बस में कर लिया था ? पर कृष्णा टाल गयी। उसने वह टोटका बताने से इनकार कर दिया। दूसरी लड़कियों की समझ में नहीं आ रहा था कि कृष्णा में ऐसा कौन सा गुण है जो उनमें नहीं है।

और एक शाम को राज ने अपनी छत से कृष्णा के आंगन में झांक कर देखा। कृष्णा की मां उस समय घर पर नहीं थी। कृष्णा और सेन गुप्ता दोनों एक ही चारपाई पर बैठे थे। उनके सामने स्टूल पर चावलों के पुलाव की बड़ी-सी प्लेट पड़ी थी और कृष्णा अपने हाथ से चम्मच भर-भर कर सेन गुप्ता को खिला रही थी। राज यह देखकर जल उठी। और जलती भी क्यों नहीं ? सेन गुप्ता ने उसका एक से एक बढ़िया खाना लौटाया था। उसकी आंखों में मारे क्रोध के आंसू आ गये। उसने सोचा, 'हाय रे निर्दयी ! चावलों का पुलाव तेरे लिए इतना स्वादिष्ट है ? और बैंगन का भुरता और तरतराते हुए शुद्ध घी का साग, मीठे पूड़े, मिस्सी रोटी और लस्सी का क्या कुछ भी महत्त्व नहीं है ?'

उस शाम कमला और मोहिनी की सलाह से राज ने एक पत्र कृष्णा के बड़े भाई को लिखकर भेज दिया—उसका पता उन्होंने कृष्णा से ही एक दिन बातों-बातों में मालूम कर लिया था। सेन गुप्ता पर अभियोग लगाये गये थे। उसे लुच्चा, लफंगा, लोफर, बदमाश और न जाने क्या-क्या बताया गया था।

... ...

इतवार को कृष्णा का भाई आ पहुंचा। संयोग से कमला, राज और मोहिनी, तीनों उस समय गली में ही खड़ी थीं और सेन गुप्ता हर रोज की तरह कृष्णा के घर था। कृष्णा की मां गली की दूसरी औरतों के साथ रोज की तरह मोहल्ले की स्त्रियों से मिलने जुलने के दौरे पर गयी हुई थी।

तीनों ने कृष्णा के भाई को देखा और मे तैयार हो गयीं। तांगा मकान के सामने आकर रुका। दरवाजा अन्दर से बन्द था।

कृष्णा के भाई सोहनलाल ने दरवाजा खटखटाया।

राज मोहनी और कमला, तीनों आगे आ गयीं। राज ने कहा—"भाई साहब, कृष्णा अन्दर ही है।"

अन्दर से खुसर-पुसर की आवाजें आनी शुरू हो गयीं। सोहनलाल सारा मामला समझ गया। गुस्से से उसका चेहरा लाल हो गया। मुंह से झाग निकलने लगा। उसने झुक कर जूता उतार लिया।

दरवाजा खुला। चारपाई के सामने स्टूल बिछा था। उस पर दाल-भात की दो पलेटें रखी थीं। चारपाई पर सेन गुप्ता बैठा था। कृष्णा दरवाजा खोल कर खड़ी थर-थर कांप रही थी।

गुस्से से लगभग चीखते हुए सोहनलाल ने कहा—"कमीने ! गुण्डे! शराफों की इज्जत से खेलता है !" फिर उसने सेन गुप्ता के कुर्ते का गले के पास का हिस्सा पकड़ लिया और जूता उठाया।

तीनों लड़कियां पीछे थीं। उनको खुशी थी कि अच्छी सजा मिल रही है सेन गुप्ता को।

परन्तु सेन गुप्ता कुर्ता छुड़ा कर पीछे हट गया। चश्मा उतार उस के शीशे कुर्ते के छोर से साफ करते हुए वह बोला—"समझता नहीं हैं—शाला ! यह 'शैक्श' का मामला नहीं है, पेट का बात है। इधर शाला चावल मिलता है इसलिए हम आता है—कोई बुरा मतलब से नहीं आता !"

सोहनलाल का सारा गुस्सा पल भर में ठंडा हो गया—एक मुस्कान उसके चेहरे पर बिखर गयी।

तीनों लड़कियां धक्-से रह गयीं।

'कृष्णा का टोटका ! हाय रे, निर्दयी यदि ऐसा था तो...' तीनों यही सोच रही थीं।

* * * *

आखिरी पत्र

आज कुलदीप मर गया है, तो मैं तुम चारों को उसके आखिरी पत्र की एक-एक प्रति भेज रहा हूं। यह जानते हुए भी, कि अब तुम चारों विवाहिता हो, और शायद उसे भूल भी चुकी हो। कुलदीप ने न चाहते हुए भी तुम चारों को मानसिक ठेस पहुंचायी थी। इस कारण सभी उससे नाराज़ थे। मैं उसका दोस्त था, लेकिन इसके बावजूद भी इसी कारण उसे अच्छे शब्दों में याद नहीं करता था, कि वह इतना गैरज़िमेदार क्यों है? क्या उसे उन लड़कियों की भावनाओं का तनिक भी ख्याल न था? इन प्रश्नों के उत्तर उससे न पाकर मैं उससे नाराज़ रहता था। और यही कारण था कि मैंने उसकी मित्रता को अधिक महत्व नहीं दिया।

तुम वही चार लड़कियां हो, जिन से भिन्न-भिन्न समय पर उसने मंगनी करके बिना कारण तोड़ दी। उस समय तुमने अपने दिल में उसे कितना कोसा होगा, और उस के सम्बन्ध में कैसे-कैसी धारणाएं

बनायी होंगी। उसे आज के इस चिकने-चुपड़े समाज का एक गर्वीला युवक समझ कर तुमने क्या-क्या न सोचा होगा।

मैं भी तुम्हारी तरह इस गलतफहमी का शिकार था, कि वह एक बिगड़ा हुआ युवक है, जो अपनी शिक्षा, सुन्दरता और योग्यता के कारण अत्यधिक गर्वीला हो गया है। जिसके हृदय में किसी दूसरे की भावनाओं का कोई मूल्य नहीं। जो लड़कियों के भाग्य से खेलना अपने मनोरंजन का एक साधन मानता है।

और अब ? उसका यह आखिरी पत्र है, जिसकी एक-एक प्रति मैं तुम्हें भेज रहा हूं। यह तुम चारों को उसकी आत्मा में झांकने का अवसर देगा, और तुम्हें वास्तविकता के दर्शन कराएगा।

तुम में से एक का नाम आशा है। मुझे भलि भांति याद है, कि आशा से उसकी मंगनी इसलिए हुई थी, कि आशा का भाई रमेश उसका भी मित्र था और मेरा भी। बातचीत मेरे सामने ही हुई थी। रमेश ने केवल इतना ही कहा था—"कुलदीप, मेरी बहन आशा ने एक मासूम सी इच्छा अपने हृदय में पाल रखी है। उसने इस सम्बन्ध में आज मुझे बताया है। क्या तुम आशा की इस इच्छा की पूर्ति करोगे ?"

और कुलदीप ने तुरंत ही सहमति प्रकट कर दी थी, जिससे मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई थी। मेरे दो दोस्त आपस में एक दूसरे के बहुत करीब आ रहे थे। इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती थी ? और फिर दोनों की मंगनी हो गयी थी। कुलदीप की अंगूठी आशा की उंगली में पहुंच गयी थी, और कुलदीप की कलाई पर आशा की ओर से एक घड़ी बन्ध गयी थी। आशा कुलदीप का एक सुन्दर चित्र अपनी किताबों में छिपा कर रखने लगी थी। और फिर एक दिन कुलदीप ने बहुत गिरे हुए स्वर में मुझ से कहा था—"सत्य, मैं यह मंगनी तोड़ देना चाहता हूं।"

मैं इस बात के लिए तैयार न था। मैंने उससे कारण पूछा, पर उसने कोई संतोषजनक उत्तर न दिया। मैंने उसे भला-बुरा कहा, आशा के प्रति भारी अन्याय की बात उठायी। हर सम्भव तरीके से मैंने उसे समझाने का प्रयत्न किया। लेकिन वह अपने इरादे पर दृढ़ रहा।

"नहीं, सत्य," उसने कहा —"मैं यह मंगनी कायम नहीं रख सकता मैं रमेश को लिख दूंगा।"

मुझे यह भी याद है, कि पत्र मिलने के बाद रमेश और उसके पिता जी मेरे पास आये थे। वे बहुत चिन्तित थे। आशा रो-रो कर निढाल हो गयी थी। मैंने उनके सामने कुलदीप को कोसा, गालियां भी दीं, क्योंकि मैं उस समय वास्तविकता से दूर था। मुझे तो उस समय कुलदीप दोषी ही नजर आता था।

बीणा से हुई मंगनी भी मुझे याद है। बीणा तुम चारों में से एक है, और एक बड़े धनी घराने की लड़की है। उससे कुलदीप की पहली मुलाकात एक सुनसान सड़क पर हुई थी। वह अकेली अपनी बिगड़ी हुई कार के मड-गार्ड पर बैठी थी। और कुलदीप ने अपनी मोटर-साईकिल के लैंप की रोशनी में उसकी गाड़ी ठीक करके उसे घर पहुंचाया था। फिर एक दिन कुलदीप ने मुझ से कहा था —"सत्य, बीणा एक बहुत बड़े फारेस्ट अफसर की लड़की है। बहुत सुन्दर, बड़ी भोली, बहुत अच्छी है वह।"

मैंने संशय की दृष्टि से उसे देखा। उसका चेहरा इस बात का समर्थन करता था, कि वह बीणा से प्रभावित है।

मैंने उससे कहा—"कुलदीप, यदि तुम खुश हो, तो मेरी राय की क्या आवश्यकता है? पुरानी बातों को भूल कर उसे अपना लो। आशा करनी चाहिए, कि तुम एक-दूसरे के साथ खुश रहोगे।"

उनकी मंगनी की पार्टी में हम सब दोस्त गये थे। मजाक हो रहे

थे, खुशियां मनायी जा रही थीं। चारों ओर प्रसन्नता और उल्लास का वातावरण छाया हुआ था।

एकाएक कुलदीप मेरे पास से उठ खड़ा हुआ। उसका हाथ छाती पर बायीं ओर था। उसने अत्यन्त कुम्हलाये हुए स्वर में कहा—"सत्य, मेरी तबीयत खराब है।"

देर भी बहुत हो चुकी थी, इसलिए पार्टी का कार्य-क्रम समाप्त कर, हमने उसे घर पहुंचा दिया।

और दूसरे ही दिन वह शहर से गायब था। उसके बड़े भाई को भी मालूम न हो सका, कि वह कहां गया। सभी उसके इस प्रकार भाग जाने से आश्चर्य–चकित थे। फिर एक दिन वीणा के पिता जी को उसका एक पत्र कलकत्ते से मिला था। उसने लिखा था, कि उसे बड़े अफसोस के साथ यह मंगनी तोड़ देनी पड़ रही है। मैंने यह पत्र वीणा के हाथ में देखा था। उस पर कलकत्ते के किसी अस्पताल के डाकखाने की मुहर थी। कोई पता पत्र पर नहीं लिखा था। मंगनी तोड़ने का कोई कारण पत्र में नहीं दिया गया था। हम सब हैरान थे।

मुझे याद है, कि वीणा ने बहुत शीघ्र अपने को संभाल लिया। वह एक पढ़ी लिखी, सुलझे विचारों वाली युवती थी। हम सब को मंगनी टूटने का खेद था, पर हम कर ही क्या सकते थे? उस समय मैं स्वयं इतने क्रोध में था, कि यदि कुलदीप मेरे सामने पड़ जाता, तो मैं उसकी बुरी तरह खबर लेता।

तुम चारों के लिए ये बातें कोई नयी नहीं हैं। लेकिन फिर भी मैं इन्हें दोहरा रहा हूं। उसके विरुद्ध मैं सारी सामग्री इकट्ठी कर रहा हूं, ताकि उसकी सफाई में पेश किया गया उसके जीवन का आखिरी पत्र, जो सारी स्थिति स्पष्ट कर देता है, तुम्हारे सामने रखा जा सके, और तुम चारों की आत्माएं उसके प्रति न्याय कर सकें।

तीसरी लड़की उमा थी। उमा मेरी भतीजी है। कुलदीप का उससे परिचय मैंने ही कराया था। कुलदीप कलकत्ते से लगभग एक बरस बाद लौटा था। पिछली घटनाएं हम भूल चुके थे। वह बहुत बदल चुका था। और पहले से अधिक सुन्दर तथा गम्भीर दिखाई देता था। उमा से उसका परिचय कराते समय मुझे सपने में भी यह आशा न थी, कि उमा इतनी जल्दी कुलदीप से प्रभावित हो जाएगी। और एक दिन जब उमा ने अपनी मां से कह दिया था, तो मेरे बड़े भाई ने मुझ से पूछा था—"क्यों, सत्य, कुलदीप और उमा की जोड़ी कैसी रहेगी ?"

मैंने उन्हें इस इरादे से अलग रखने की कोशिश की थी। मैंने उन्हें बताया था, कि कुलदीप दो बार पहले अपनी मंगनी तोड़ चुका है, और वह भी बिना किसी कारण के। और दोनों बार उसकी मंगनी उसकी अपनी पसन्द और अपनी मर्जी से हुई थी। लेकिन मेरी चेतावनी बेकार गयी। उमा की इच्छा जिद्द बन गयी। उसके मां-बाप को झुकना पड़ा। कुलदीप से उसकी मंगनी हो गयी। इस बार हम लोग चुप रहे। डर हमें बहुत था, लेकिन कोई अशुभ बात हम मुंह से निकालना नहीं चाहते थे।

हां, तो मंगनी हो गयी। मेरे दिल में एक गिरह थी, एक अशंका थी। और अंत वही हुआ भी, जिसकी मुझे अशंका थी। कुलदीप देहली गया। और हमें किसी ने बताया, कि वह बीमार है और अस्पताल में है। हम ने उसे खोजने का प्रयत्न किया। लेकिन वह न मिला। उमा अपने भाग्य पर रोती रही। न जाने उसे जमीन निगल गयी, या आसमान खा गया।

छः माह बाद वह लौटा। रात के समय वह मुझ से मिलने आया। उसने शराब पी रखी थी। उसका स्वास्थ्य पहले से गिरा हुआ था। उसने आते ही शराबियों जैसे लड़खड़ाते स्वर में मुझ से कहा—"सत्य,

देखो, मैं शराब पीता हूं। आज मैंने जुआ भी खेला है। मैंने आज और भी बहुत कुछ किया हैं। मैं बहुत बुरा आदमी हूं। बोलो, अपनी भतीजी की शादी मुझसे करोगे ?"

उमा की मंगनी टूट गयी। मैंने अपने हाथों से उसकी उंगली से अंगूठी उतार ली, और कुलदीप के मुंह पर दे मारी। उसे कंधे से पकड़ कर बाहर निकाल दिया, और उसके सामने दरवाज़ा बन्द करते हुए कहा—"आज से तुम्हारे लिए सत्य मर चुका ! अब मुझ से कोई सम्बन्ध न रखना।"

कुलदीप हम लोगों से दूर हो गया। अब हम लोगो में कभी उसका ज़िक्र न छिड़ता। वह देहली चला गया था। एक बार सुना, कि मोटर-साइकिल चलाते हुए वह बेहोश हो गया, और चार माह तक इरविन अस्पताल में पड़ा रहा। मुझे कोई चिंता नहीं हुई। मेरे दिल में उसकी तरफ से सख्ती जो आ गयी थी।

काफी समय बाद उसका एक पत्र आया। लिखा था, कि जब वह किसी अमेरिकन फर्म का मैनेजर है, और यह कि मैं उसे क्षमा कर दूं। उसने बहुत गलतियां की हैं, लेकिन अब वह उनका प्रायश्चित करना चाहता है। जहां तक सम्भव हो, वह अच्छा बनना चाहता है।

उसके पत्र का मेरे ऊपर असर हुआ। पुराने घावों को मैं भूल गया। एक बार फिर मेरे हृदय में उसके प्रति मित्रता का स्रोत फूट पड़ा। मैंने उसे क्षमा कर दिया।

एक बार मैं उससे मिलने दिल्ली भी गया। वह एक शानदार दफ्तर में बैठा था। अब उसका स्वास्थ्य पहले से अच्छा था, और लगता था कि उसके चरित्र में भी सुधार हुआ है।

"अब मैं ठीक हूं, सत्य, बिल्कुल ठीक," उसने छाती पर बायीं ओर हाथ रख कर कहा—"और मैं शादी कर रहा हूं।"

"सच ?" मैंने पूछा—"कब, कहां, कैसे, किस के साथ ?"

उसने उत्तर दिया—"हां, सत्य ! बहुत शीघ्र, यहीं दिल्ली में। वैदिक रीति से, और शीला भाटिया के साथ। शीला बहुत अच्छी और सुन्दर लड़की है। मेरे पड़ोस में रहती है। लेकिन पहले मंगनी होगी।"

"मंगनी ?" मैं कुम्हला-सा गया।

"हां, एक दिन मंगनी होगी, और फिर एक माह बाद शादी हो जाएगी।"

मैं फिर उसकी मंगनी के समारोह में शामिल हुआ। शीला के माता-पिता पुरानी परम्परा के थे। मंगनी पर उन्होंने हवन कराया। हवन के बाद प्रीति-भोज हुआ। हम सब खुश थे। और कुलदीप तो खिला पड़ रहा था।

विवाह की तारीख बीस दिनों के बाद नियत हुई। मैं यहां वापस आ गया। विवाह की तारीख से दो दिन पहले मुझे उसका पत्र मिला, कि वह मंगनी तोड़ने को मजबूर हो गया है। विवाह नहीं होगा। वह बम्बई जा रहा है, और यह कि मैं उसे क्षमा कर दूं।

इस बार मैंने उसे क्षमा नहीं किया। मैंने सदा के लिए उससे नाता तोड़ लिया। बम्बई से उसके दो-तीन पत्र आये, जो बहुत लापरवाही से गंदे-से कागज़ों पर घसीटे हुए थे। लेकिन मैंने किसी पत्र का उत्तर न दिया। उसका पता फिर किसी अस्पताल का था।

शीला तुम चारों में से एक है, और मैं उसे जानता हूं। उसके माता-पिता ने उसी लग्न में किसी और अच्छे लड़के से उसका विवाह कर दिया।...

आज, उस घटना के तीन माह बाद, कुलदीप मर गया है। आशा वीणा, उमा और शीला के लिए तो वह तभी मर गया था, जब उसने उनकी भावनाओं को ठेस पहुंचाई थी, उनके दिल तोड़े थे। लेकिन संसार के लिए वह आज मरा है—अपने स्थान, घर-बार, सगे-सम्बन्धियों से दूर, बम्बई के एक अस्पताल में।

उसके पत्र की नकल यह है :-

प्रिय सत्य,

'डाक्टर कहता है, कि अब मेरा धड़कता हुआ दिल किसी समय भी रुक सकता है। तुम मुझ से नाराज़ हो। लेकिन दोस्त, मैंने दुनिया के साथ निर्वाह करने की पूरी-पूरी कोशिश की है। मेरे दिल में भी कुछ आशाएं थीं, कुछ इच्छाएं थीं। मैं भी एक सुन्दर पत्नी, एक प्यारा बच्चा और सुन्दर घर चाहता था। डाक्टर ने जब मुझे पहली बार बताया, कि मुझे हृदय-रोग हुआ है, और मुझे नियमपूर्वक अपनी चिकित्सा करानी चाहिए, तब मेरी मंगनी आशा से हो चुकी थी। डाक्टर ने कहा, कि ऐसी दशा में शादी घातक सिद्ध होगी। सो ऐसी दशा में मैं आशा को अपने दामन से बांध नहीं रखना चाहता था। मैंने किसी को कुछ नहीं बताया, और मंगनी तोड़ दी।

'यह भाग्य का खेल था, मित्र। कुछ समय बाद डाक्टर ने मुझे स्वस्थ बताया। उसने कहा कि अब मैं बिलकुल ठीक हूं। जीवन के लिए मेरा प्रेम फिर जाग उठा। मेरे जीवन में तब वीणा आयी। लेकिन उसी दिन मैं फिर बीमार हो गया। कलकत्ते के अस्पताल में मुझे बताया गया, कि अब मैं बिलकुल स्वस्थ हूं। हृदय-रोग ऐसा ही होता है। उमा और फिर शीला मेरे बीमार होकर स्वस्थ होने और स्वस्थ होकर बीमार होने के मध्य की कड़ियां थीं।

'मैं मरना नहीं चाहता था। जीवन के लिए मेरा प्रेम मुझे फिर-फिर जीवन में खींच लाता था। भगवान साक्षी है, यदि मैं उनमें से किसी के साथ शादी करके उसे विधवा छोड़ गया होता, तो समाज में उसका जीवन नष्ट हो गया होता। हर बार जब मैंने मंगनी की, तो मुझे विश्वास था, कि मैं अब अच्छा हो जाऊंगा। और हर बार जब मैंने मंगनी तोड़ी, तो मुझे विश्वास था, कि अब मैं बच नहीं सकूंगा।

'अब मेरा जीवन इस कश-मकश से ऊब गया है। जीवन से प्रेम

मुझे अब भी है। एक सुन्दर पत्नी, एक प्यारे बच्चे और एक सुन्दर घर की लालसा अब भी मेरे मन में है। लेकिन डाक्टर का कहना है, कि मेरा धड़कता हुआ दिल कभी भी रुक सकता है।..."

यह पत्र कुलदीप मेरे पास भेज न सका। अब इस पत्र के साथ ही अस्पताल के बड़े डाक्टर का पत्र भी मिला है, जिसमें उन्होंने मुझे कुलदीप की मृत्यु की सूचना दी है। डाक्टर ने लिखा है, कि कुलदीप एक साहसी युवक था। उसका शरीर आखिरी क्षण तक मृत्यु से लड़ता रहा। डाक्टर ने अपने जीवन में ऐसा साहसी और शक्तिशाली रोगी कभी नहीं देखा।

कुलदीप अब जीवित नहीं। उसकी सफाई उसके आखिरी पत्र के रूप में तुम्हारे सामने है। क्या तुम चारों उसे क्षमा कर सकोगी ?

* * * *

पन्द्रह वर्ष की दीवार

हर बार जब तुम्हारा पत्र मिलता है, तो घण्टों उसे हाथ में लिए बैठा रहता हूं, और ऐसा महसूस होता है कि जैसे यह पत्र नहीं, तुम्हारा दिल है, जो मेरे हाथ में पड़ा धड़क रहा है। पत्र के हर शब्द से तुम्हारी उदास डबडबाई हुई आंखें झांकती नजर आती हैं। हर पंक्ति चुपके-चुपके तुम्हारा सन्देश सुनाती हैं—उदास और दर्द-भरा सन्देश।

और मैं तुम्हारे दिल को अपने हाथ में लिए सोचा करता हूं, कि यह अभी तक धड़क क्यों रहा है? इसमें अभी तक उम्मीद की गर्मी क्यों है? इसलिए कि खुद मेरा दिल जम कर पत्थर हो चुका है—आशा और विश्वास की उष्णता से कोसों दूर, बेजान, सर्द। हम दोनों में कदाचित् यही अन्तर है। हर नया दुःख जहां मुझे मौन और कठोरता देता है, वहां तुम्हें नई व्यथा, नई वेदना प्रदान करता है। इसीलिए तो हमारे रास्ते अलग-अलग हैं।

तुम्हें यहां से गए सात मास हो गए हैं। तुम यहां से तीन सौ मील नहीं, सात मास दूर चली गई हो। ये सात मास मेरे लिए तो सात समुद्र बन गए हैं, जिन्हें पार कर के तुम तक पहुंचना मेरे वश की बात नहीं रही। इस अवधि में मेरी ओर से तुम्हें किसी पत्र का उत्तर नहीं मिला। फिर भी तुम मुझे पत्र लिखती रही हो। अपनी भावनाओं के खौलते हुए लावे को मेरे पत्थर-से दिल पर उंडेलती रही हो। किन्तु निष्फल। इस मुर्दा दिल में तुम्हारी भावनाओं की बिजली के स्पर्श ने कोई उष्णता उत्पन्न नहीं की। काश,' तुम्हें इस बात का एहसास हो गया होता, और तुम पत्र लिखना बन्द कर देतीं !

तुमने लिखा है, कि तुम मेरी नजरों के सामने आ कर मुझ को परखना चाहती हो, इस आशा से कि शायद इससे मेरा पत्थर-दिल पिघल जाए। किन्तु, गुड़िया, तुम्हारी यह आशा निर्मूल है। अपने विवाह के उपरान्त अब तक मुझे बड़ी-से-बड़ी घटनायें भी प्रभावित नहीं कर सकीं, कदाचित् इसलिए कि विवाह ही मेरे जीवन की सब से महत्वपूर्ण घटना थी।

यह बात प्रसंगवश आ ही गयी है, तो तुम भी सुन लो। पिछले मास बड़ी सादगी से कुछ रस्में पूरी करने के बाद मैं विवाह के बन्धनों में बन्ध गया।

मैं जानता हूं, कि इस खबर ने तुम्हारे दिल को क्षण भर के लिए रोक कर फिर तेज़ी से धड़कने को विवश कर दिया होगा। 'ब्याह? उनका ब्याह हो गया ?' तुमने इतनी बार यह प्रश्न अपने दिल से पूछा होगा, कि इन शब्दों का वास्तविक अर्थ ही गुम हो गया होगा।

हां, गुड़िया, मेरा विवाह हो गया !

याद है, मैंने तुमसे जाते समय कहा था, कि तुम बहार के अन्त में खिली एक कली हो, और मैं वह फूल हूं, जिसे माली की नजरें अब अधिक देर तक नहीं रहने देंगी। गुड़िया, तुम मुझ से पन्द्रह वर्ष छोटी

हो। क्या मैंने तुम्हें यह नहीं बताया था ?

और पन्द्रह वर्ष जीवन का एक दीर्घ अंश है, गुड़िया,—एक पूरी जिन्दगी है। पन्द्रह वर्षों में आठ वर्ष का बच्चा एम० ए० कर लेता है, और तुम जैसी अल्हड़ लड़कियां पत्नियां और माताएं बन जाती हैं।

गुड़िया, मजाक नहीं कर रहा हूं, सच कहता हूं; तुम्हें कम-से-कम दस वर्ष पूर्व जन्म लेना चाहिए था।

यह बात भी शायद अजीब लगेगी। मुझे याद है, कि तुम मेरे कमरे में आंधी की तरह आया करती थीं। किताबें, कागज, बक्स, अलमारियां, सभी-कुछ उलट-पलट कर रख देती थीं। और जब तुम्हें अपने मतलब की कोई पुस्तक मिल जाती थी, तो वहीं कुर्सी पर बैठ पढ़ना शुरू कर देती थीं। तुम रिश्ते में मेरे एक प्रिय मित्र की भांजी थीं, इसलिए मैं तुम्हें कुछ नहीं कह सकता था। मैं पलंग या कुर्सी पर बैठ कर, एकटक तुम्हें देखता रहता था। अक्सर जब मैं तुम्हारी उपस्थिति में ही बिखरी हुई चीजों को कायदे से रखना आरम्भ कर देता था, तो तुम कहती थीं—"वाह! घर की मालकिन का काम तो कोई आप से सीखे!"

और मैं चाहते हुए भी तुम्हें यह नहीं बता सकता था, कि मुझे जीवन में अब गम्भीरता अच्छी लगती है, कायदा पसन्द है। कदाचित् मैं समय से पहले ही बूढ़ा हो चला था, या मेरे हृदय में जीवन और समाज से समझौता करने के कीटाणु पलने लगे थे। कोई-न-कोई बात अवश्य थी। लगता था, कि तुम उस समय भी बच्चों की पत्रिकाएं या टार्ज़न के उपन्यास पढ़ती थीं। गली में रात के ग्यारह-ग्यारह बजे तक अपनी सहेलियों के साथ आंखमिचौनी खेलना, लड़ना, चीखना, ये सब बातें मेरे लिए तुम्हें 'गुड़िया' कहने को पर्याप्त थीं। मैं नहीं जानता था, बिलकुल नहीं जानता था, कि तुम्हारे नन्हें-से कोमल सीने में भी एक जवान दिल हो सकता है, भड़कता, मचलता, प्रेम की लालसा से

भरपूर और इस गर्म जवान दिल में मेरे लिए ही प्रेम की भावनाएं उबल सकती हैं।

तुम बारह-तेरह वर्ष की समय से पहले जवान होने वाली युवती थीं, और मैं युवावस्था की सीमा पार कर जीवन की गम्भीर समस्याओं से उलझने वाला अट्ठाइस वर्षीय पुरुष था। मज़ाक नहीं है, गुड़िया, भारत के अन्य लाखों नवयुवकों की भांति यदि विवाह की हथकड़ियां मुझे भी अठारह वर्ष की आयु में पहना दी गयी होतीं, तो मैं भी कई बच्चों का बाप होता।

मैं उस समय तक नहीं जानता था, कि रात के ग्यारह बजे तक हमजोलियों के साथ आंखमिचौनी खेलने वाली गुड़िया वास्तव में प्राप्त-यौवन है, बच्चों की पत्रिकाएं और टार्जन के उपन्यास पढ़ने के अतिरिक्त वह मेरी कहानियां भी पढ़ती है। मेरी दृष्टि में तुम बच्ची थीं—मेरे प्रिय मित्र की भांजी।

परन्तु मैंने तुम में वे परिवर्तन भी आते देखे हैं, जो सहसा आए, और जब आये, तो महसूस हुआ, कि उन्हें अभी कुछ देर और नहीं आना चाहिए था। मुझे इस परिवर्तन का आभास सर्वप्रथम तब हुआ था, जब तुम मेरे जन्म-दिवस पर मुझे बधाई देने आई थीं। मैंने शाम को चाय-पार्टी पर बहुत से मित्रों को निमंत्रित किया था। उनमें स्त्रियां भी थीं, पुरुष भी थे, और वे नवयुवक भी, जो किसी भी कवि अथवा साहित्यकार के गिर्द ही इकट्ठे हो जाते हैं।

मैंने तुम्हें पार्टी में निमंत्रित नहीं किया था।

मैं भूल ही गया था। तुम्हारा अस्तित्व मेरे निकट सम्भवतः एक अनावश्यक रिश्तेदार लड़की का-सा था। हां, तुम्हारे घर मिठाई भेजवाने का विचार अवश्य था, और इस सिलसिले में मैंने नौकर को पहले से ही ताकीद कर दी थी। परन्तु तुम्हें पार्टी में निमंत्रित करने का विचार तक मुझे न आया था। पार्टी समाप्त होने और अतिथियों

के विदा होने के बाद तुम आई थीं। और तुम्हें उस समय देखते ही मुझे यह आभास हुआ था, कि तुम में वह परिवर्तन आ गया है।

तुम आकर बैठ गयी थीं। मैंने उस दिन पहली बार तुम्हें साड़ी पहने देखा था। तुम्हारी बड़ी-बड़ी आंखों में काजल लगा था, और तुम बार-बार साड़ी का पल्लू अपने सिर पर ओढ़ रही थीं। तुम गुड़िया नहीं थीं—एक प्राप्त-यौवना थीं। और तुमने बैठकर बड़ी गम्भीरता से अपना उपहार आगे बढ़ा दिया था—एक इलेक्ट्रिक शेविंग सेट। उस समय अवचेतन मन के किसी कोने से तुम्हारे विचार ने चीख-चीख कर कहना आरम्भ कर दिया था, कि मैंने तुम्हें पार्टी पर निमंत्रित न करने की भूल की थी। लेकिन तुम खामोश थीं।

आखिर तुमने कहा था—"आप से तो आपकी कहानियों के पात्र ही अच्छे हैं!"

यह गुड़िया नहीं थी! यह तुम बोल रही थीं। गुड़िया ने तो शायद मेरी कहानियां कभी न पढ़ी होंगी। यह तुम्हारा वह परिवर्तन बोल रहा था, जो सहसा आ गया था, और महसूस होता था कि यदि कुछ देर और न आता तो अच्छा था।

उत्तर में मैंने कहा था—"अपनी कहालियों के पात्रों का रचियता तो मैं स्वयं हूं।"

"परन्तु वे पात्र आप से बहुत अच्छे हैं!" तुम लगभग सिसकते हुए बोली थीं—"वे दूसरों की भावना का मान करना जानते हैं। वे नर्म हृदय के होते हैं, उनमें सहानुभुनि होती है। और आप—आप... तो कठोर हैं, कठोर, पत्थर-दिल!" और तुम सचमुच रो पड़ी थीं और मुझे तुमसे क्षमा मांगनी पड़ी थी। और कहना पड़ा था—"अच्छा, गुड़िया, भविष्य में ऐसा नहीं होगा।"

तुमने आंसू पोंछ लिए थे, परन्तु अप्रसन्नता के भाव तुम्हारे चेहरे पर रेंगते रहे थे। पलकें गीली थीं। मेज पर गुलदस्ते में सजे फूलों की

आंखों और तुम्हारी आंखों में केवल रंग का अन्तर था। नहीं तो दोनों एक-जैसी थीं—कोमल-कोमल, बड़ी-बड़ी, गीली, अर्द्धनिमीलित। तुमने एक अजीब अन्दाज़ से बालों को एक झटके से पीछे करते हुए कहा था—"आप तो ऐसा समझते हैं न, जैसे मैं अभी तक छोटी-सी गुड़िया हूं। जो आता है, मुझे नन्ही-मुन्नी कहता है। लोग यह नहीं देखते, कि अब मैं मुन्नी नहीं हूं, इतनी बड़ी हो गयी हूं।"

तुमने प्रशंसात्मक दृष्टि से अपने शरीर का निरीक्षण किया था, और फिर तुम अपने-आप शर्मा गयी थीं।

मैंने कहा था—"अच्छा, भई, मान लिया, कि तुम बहुत बड़ी हो गयी हो—उस युकिलप्टिस के वृक्ष से भी ज्यादा! लेकिन इस रोने का क्या मतलब?"

तुम्हारी आंखों में फिर निरीहता और उदासी के रंग घुल-मिल गए थे। और तुमने कहा था—"आप तो मुझे इतना भी महत्व नहीं देतें, जितना राह चलते लोग पत्थर को दिया करते हैं। आखिर मुझ में क्या बुराई है? अच्छी-भली लड़की हूं।"

इतना कह कर, तुम फिर शर्मा गई थीं।

मैंने ध्यानपूर्वक तुम्हारे चेहरे की ओर देखा था। तुम्हारी आंखों में क्षण भर के लिए चमक उत्पन्न हुई थी। गहरी काली आंखें, उदास चमक, और फिर पानी। चमक पानी में मिश्रित हुई, तो आंसू छलक आए। और तुम फफक-फफक कर रोने लगी थीं। तुम्हारा सिर मेरे घुटनों पर झुक गया था। कोई हमें उस हालत में देख लेता, तो क्या कहता? तुम बहुत बड़ी हो गयी थीं, गुड़िया—बहुत बड़ी। मुझे स्वप्न में भी यह ख्याल नहीं आ सकता था, कि तुम मेरे बारे में ऐसे भाव अपने मन में पोषित कर सकती हो।

अन्त में मैंने कहा था—"अच्छा, भई दीश, होश में आओ। आज से तुम हमारी दोस्त—बराबर की दोस्त!"

परन्तु यों समझने से भी तो वस्तु-स्थिति को बदला नहीं जा सकता था।

और तदनन्तर एक के बाद दूसरी, और दूसरी के बाद तीसरी, ऐसी घटनाएं हुईं, कि तुम मेरे निकट आते-आते 'गुड़िया' से 'दीश' बन गयी थीं—मेरे दुख-सुख में बराबर सम्मिलित, जीवन की गम्भीर समस्याओं में भी मुझे परामर्श देने वाली दीश या दीशी।

तुम उस समय शायद यह बात भी भूल गयी थीं, कि तुम्हारे दीश बनने से बहुत पहले नीलू मेरे जीवन में आकर लौट चुकी थी। तुम उन दिनों बहुत छोटी थीं—सात या आठ वर्ष की। तुम टाइफायड से उन्हीं दिनों उठी थीं—कमज़ोर-सी, किन्तु बहुत प्यारी बच्ची। जब हम सब डलहौज़ी गए थे, तो तुम्हारी मां भी साथ थी। नीलम तुम्हारी मां की चचेरी बहन थी—तुम्हारी मौसी, तुम से चौदह वर्ष बड़ी। तुम्हें शायद याद भी होगा, कि हम एक बार घुड़सवारी के लिए गए थे। तुम नीलम के आगे बैठी थीं। बादल रूई के धुनेके हुए गालों की भांति दाएं-बाएं खड्डों में जमे हुए थे। तुम सर्दी से कांप रही थीं। मैं और नीलम बहुत उदास थे। तुम बच्ची थीं। तुम हमारी उदासी का कारण नहीं जानती थीं, परन्तु फिर भी तुम हमारी उदासी में सम्मिलित थीं। इसीलिए तो तुम बार-बार अपनी नन्हीं-मुन्नी बातों की फुलझड़ी बिखेर रही थीं। सहसा नीलम ने कहा था—"एक मास के बाद मैं बाईस वर्ष की हो जाऊंगी, और मेरी वर्षगांठ पर इलाहबाद से एक आदमी आएगा।"

तुमने भोलेपन से पूछा था—"अच्छा, आंटी, फिर ?"

मैं खामोश था। मेरे दिल पर आरे चल रहे थे, परन्तु मैं खामोश था।

उसने फिर कहा था—"उस आदमी की इलाहाबाद में रेडियो की दूकान है। उसकी पत्नी मर चुकी है। उसके दो बच्चें हैं। उस आदमी

को उन बच्चों की देख-भाल के लिए एक नौकरानी की आवश्यकता है—"

मैंने होंठ काटते हुए उसे टोकने की कोशिश की थी।

"नीलू !" मैंने कहा था।

परन्तु गुड़िया, तुमने बालसुलभ उत्सुकता से फिर पूछा था—"फिर, आंटी ?"

वह बोली थी—"उस आदमी के पास बहुत-सा रुपया है। उसकी शिक्षा मैट्रिक तक है, परन्तु उस नौकरानी के लिए वह आकाश से तारे तक तोड़ लाने के लिए भी तैयार है।"

"बड़ी अच्छी कहानी है !" तुमने मासूमियत से कहा था।

वह पुन: बोली थी—"वह आदमी मेरी वर्षगांठ पर यहां आएगा। उपहार-स्वरूप वह फिलिप्स का कीमती सेट लाएगा, क्योंकि उसे नौकरानी की जरूरत है, और यहां उसे इच्छा के अनुकूल नौकरानी मिल सकती है।"

"नूरां पहाड़िन को हम कभी न जाने देंगे," तुम बोली थीं।

वह नूरां पहाड़िन तुम्हारी आंटी नीलम थीं, गुड़िया, जिसे इलाहाबाद का रेडियो-विक्रेता मुझ से छीन कर ले गया। मैं उफ़ तक नहीं कर सका। मेरे जीवन का कमल आग में झुलस गया। मेरे सीने में दिल जल कर मुट्ठी भर राख बन गया। परन्तु मैं फिर भी जीवित रहा। उसी दिल में तुम्हारी मुहब्बत ने फिर नए कमल खिलाए।

मैं उस समय भी कभी-कभी सोचता था, कि तुम अभी नवीं श्रेणी में हो। तुम्हारे घर में सभी तुम से बड़े हैं। वे अभी दस वर्ष तुम्हारे विवाह की बात नहीं सोच सकते। तुम बी० ए० करोगी, शायद इससे भी ज्यादा पढ़ो। और मैं—शिक्षा समाप्त कर एक नया दौर आरम्भ करने का इच्छुक। हमारे रास्ते अलग-अलग हैं, मैं सोचता। हमारे

बीच पंद्रह वर्ष की एक दीवार है, जिसे मैं और तुम मिलकर भी नहीं गिरा सकते—मैं पंद्रह वर्ष पीछे नहीं जा सकता, तुम पंद्रह वर्ष आगे नहीं आ सकतीं ! उम्रों की इस लम्बी-चौड़ी नदी को पार करना हमारे वश की बात नहीं।

परन्तु तुमने शायद यह कभी नहीं सोचा। तुमने शायद कभी क्षण भर के लिए यह खयाल नहीं किया, कि मैं उम्र में तुमसे बहुत बड़ा हूं। तुमने कदाचित इस दीवार के अस्तित्व को कभी अनुभव नहीं किया। समय बहुत बड़ी शक्ति है, गुड़िया। समय किसी के वश में नहीं हैं। समय और दूरी यदि वश में होते, तो इनसान आज सभी सितारों पर अधिकार जमा चुका होता। तुम बहुत भोली हो, गुड़िया, बहुत भोली।

नीलम के जाने के बाद भी यदि मैं जीवित रहा, तो तुम भी जीवित रहोगी गुड़िया। तू कभा नहीं मरोगी। फूल खिलते हैं, और मुर्झा कर मिट्टी हो जाते हैं, तो उस मिट्टी से फिर फूल खिलते हैं ! नीलम के जाने के बाद तुम्हारे मिलने से यदि मेरे दिल की कली खिल सकती है, और तुम्हारे जाने के बाद यदि मैं जीवन में कोई और लड़की तलाश कर सकता हूं, तो कोई कारण नहीं कि तुम्हें ऐसा साथी न मिले, जो तुम्हारे दुखों को बंटा सके। तुम्हें अभी बड़ी होना है। भविष्य तुम्हारे सामने है। जीवन की इस लम्बी राह में साथी मिल जाते हैं। समय दर्द है, तो दवा भी है। समय जख्म है, तो मरहम भी है। हां, एक बात है। नया साथी चुनते समय वर्ष और आयु की कोई दीवार सामने न रखना !

*　　*　　*　　*

क्षण का सन्तुलन

क्षण का सन्तुलन बिखर गया।

वह बैठा बैठा चौंक उठा। गाड़ी किसी स्टेशन पर रुकी थी। बाहर गाढ़ा अंधेरा था। स्टेशन की बत्तियां दिखाई नहीं दे रही थीं। शायद किसी छोटे-से स्टेशन का नीचा प्लेट-फार्म दूसरी ओर था। डब्बे में कुछ लोग बैठे ऊंघ रहे थे। कुछ पसीने से तर-बतर होते हुए भी मच्छरों और पतंगों से बचने के लिए चादरें ओढ़े सोए पड़े थे। ऊपर डब्बे की छत पर केवल दो बल्ब थे। पीले, बीमार-से बल्ब, जिन पर हजारों लाखों पतंगे चक्कर काट रहे थे। पसीने की खट्टी बू ने उसका जी मतला दिया, परन्तु वह बैठा रहा। उसका जी चाहा, वह खिड़की से अजाने स्टेशन के पिछवाड़े कूद जाए। दूर तक खेतों में भागता ही चला जाए। इतनी दूर तक कि कोई उसकी धूल को भी न पहुंच सके।

गाड़ी फिर चल पड़ी थी।

धीरे-धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता, ढीचूं-ढीचूं, जैसे गद्धा चल रहा हो। गाड़ी का इंजर पिंजर चीख रहा था। उसका फिर जी चाहा कि

वह ज़ंजीर खेंच कर गाड़ी और समय की उड़ान दोनों को रोक ले और फिर ज़ोर से चीखे। लोगों को बता दे कि वह ख़ामोश, सुन्दर और नर्म वस्तुओं का स्पर्श चाहता है। उसे खामोशी और स्कून चाहिए। उसे रेशमी हाथों से बने चांदी-से तारों वाले झूलों के हुलारे चाहिएं। वह स्वप्न-देश की अजानी चट्टानों और अजनबी तट की ठंडी और नर्म बालू पर अपने तलवे सहलाना चाहता है। वह हलके संगीत के स्वरों पर तैरने का इच्छुक है। उसे रेल के भद्दे सफ़र से नफ़रत है। उसे अध-सोए, पसीने से तरबतर खर्राटे लेते हुए सह-यात्रियों से नफ़रत है। वह चाहता है कि यह गाड़ी किसी ऐसी सुरंग में खो जाए, जहां से वापस न निकल सके। उसे सुन्दरता, स्वच्छता, निर्मलता और नर्मी चाहिए। ज़िन्दगी कितनी भद्दी, गंदी, खुरदरी और सख्त है!

तार में केवल यही लिखा था—"शीघ्र पहुंचो! कमला सख्त बीमार है!"

उसने जेब में से तार निकाल लिया। उसके लिए तो जैसे ईश्वर ही मर गया था। तार को उसने पीली बीमार रोशनी में एक बार फिर पढ़ा। शब्द उसकी आंखों के सामने नाचने लगे, तो उसने कागज़ तह करके फिर जेब में रख लिया। एक लम्बा सांस लिया। कमीज़ के बटन खोल दिए। पतलून पर बन्धी पेटी चुभ रही थी, उसे ढीला कर दिया। फिर बूट खोल दिए और पांव सामने की सीट पर पसार दिए।

एक क्षण के लिए उसने आंखें बन्द कीं, फिर उसके होठों पर एक भद्दी-सी गाली आई। गाली हवा में उछलने-से बाल-बाल बची। एक पतंग उसके खुले गले में घुस गया था और अब सीने-के बालों में उलझ रहा था। उसने बहुत निर्दयता से उसे चुटकी में पकड़ कर मसल दिया। उसका जी फिर मतला गया।

"मुझे कमला से, उसकी बीमारियों से नफ़रत है!" उसने स्वयं से कहा। (नहीं, तुम झूठ कहते हो! बकवास है, यह सब! तुम

उसके लिए एक-एक क्षण गिन-गिन कर काटते रहे हो) "परन्तु कुछ भी हो, उसके कारण से ही मैं लाख मुसीबतों में घिरा हूं। मेरे सब दुखों का कारण वही है !"

गाड़ी तेज हो गई थी। धका-धक, धका-धक, धक-धका-धक धक-धका—बूढ़ी चिड़िया आएगी, रोटी पानी लाएगी, मुन्ने को बहलाएगी, खीर बताशा खाएगी—कमला जब बच्चे को लोरी दिया करती थी, तो उसे सदैव गाड़ी के चलने की लय का विचार आता था। आज गाड़ी के चलने से उसे कमला की लोरी याद आ रही थी।

क्षण का सन्तुलन स्थिर होने वाला था। उसने आंखें फिर मूंद लीं। नींद की घाटियों में फिसलने से पहले उसने एक बार माथे का पसीना झटका—एकाएक वह सीट पर से गिरते-गिरते बचा। एक साहब गुज़र कर टट्टी तक जाना चाहते थे और इसलिए उसकी टांगों को धकेल रहे थे। वह संभल कर बैठ गया। गुजरने वाले सज्जन कुछ बड़बड़ाते हुए गुजर गए, तो उसने जैसे एक विद्रोह-भाव से अपनी टांगें सामने वाली सीट पर दूर तक फैला दीं।

जराब-पोश पांव किसी वस्तु से टकराया। ओह ईश्वर! सामने सीट पर तो कोई स्त्री सोई हुई थी और इस ओर पहले उसका ध्यान ही नहीं गया था! उसका पांव उस स्त्री की दाहनी सुडौल बांह से टकरा रहा था। गाड़ी के हिचकोलों से कभी बांह अधिक दब जाती, कभी कम। उसके पांव से केवल दो तीन इंच दूर ही उस स्त्री का स्वस्थ भरपूर वक्ष था। सांस लेने से वह ऊपर-नीचे हो रहा था। स्त्री अवश्य सुन्दर है, उसके मन में गूंजा।

एक क्षण के लाखवें भाग के लिए वह ईश्वर बन गया—उसकी उर्वरा कल्पना ने उस स्त्री को कमला का शरीर बख्श दिया। वह कुछ देर तक नजरों में ही उसके शरीर से खेलता रहा। स्त्री का मुख चादर से ढका था। उसकी दो तीन लटें बिखर कर सीट पर कुंडली मारे

बैठी थीं —भरपूर जवानी खेतों की ! भरपूर जवान, स्वस्थ, जाट स्त्री ! कंवारी धरती और उसपर लहलहाते हुए खेत उसकी आंखों के सामने से सर सर करते गुज़र गए ।

जैसे डब्बा रंगीनियों से भर गया ! जैसे उस बंद, गर्म और बोझल वातावरण में सरसों के पीले फूल मुस्करा उठे । जैसे दांते को उसका दैवी नग़मा मिल गया । जैसे माइकलएंजलो ने अपना शाहकार बना लिया जैसे कीट्स ने बुलबुल और शैली ने स्काइलार्क का गीत सुन लिया ।

"कमला कितनी अच्छी है। चार मास से मायके छोड़ रखी है, डाक्ट्रेट के थीसस लिखने में रुकावट न पड़े । कभी शिकायत नहीं करती । कभी गिला नहीं आया उसके होंठों पर !" (तुम झूठ कहते हो ! यह केवल दिल बहलावे की बात है । तुमने कभी उससे प्रेम नहीं किया !) "कुछ भी हो, कमला बहुत अच्छी पत्नी है । जीवन आखिर इकट्ठा काटना है, और फिर पति-पत्नी का तो जन्म-मरन का साथ है ।

गाड़ी ने विसल दिया । एक पटड़ी बदली । एक पुल पर से गुज़री । पांव बांह से हटकर वक्ष से स्पर्श करने लगा । उसके मस्तिष्क पर गर्म और नर्म धुन्ध छा गई ।

एक पतंगा उसके खुले गले में आ घुसा । उसने बड़ी नर्मी और प्यार से उसे पकड़ कर बाहर हवा में उड़ा दिया । उसका जी चाहा, गाड़ी राकट की-सी तेज़ी के साथ उड़ती चली जाए ।

क्षण भर सब कुछ स्थिर हो गया ।